

भाषा—दानकेलिकौमुदी

गुरु-गौराङ्घ्रिरजसां कृष्णदासेन लिप्पुना ।
मयानुवाद्यते सन्तः ! श्रीदानकेलिकौमुदी ॥



गोवर्द्धन की दानघाटी में शुल्क (कर) प्रहण छल से रोकी हुई श्रीराधा की किलकिञ्चित् स्तवकिनी रूप दृष्टि हम सब की शोभा वृद्धि करे जो अन्तर में ईषत् हास्य-निबन्धन से उत्कूल है, जिस के पक्ष समूह जलकण से परिव्याप्त है, अन्तःभाग किञ्चित् पाटलवर्ण है, पुनः जो रसिकता के द्वारा उत्सिक्त है, जिसका अप्र-भाग संकुचित है एवं मधुरता के द्वारा जिस की तारा किञ्चित् वक्र है । तात्पर्य—श्रीराधा सखीगण के साथ गोवर्द्धन तट (तरहटी) स्थित मार्ग होकर यज्ञार्थ घृत लेकर जा रही थी, वहाँ दानघाटी में अवस्थित होकर कौतुक करते हुए शुल्क-प्रहण छल से श्रीकृष्ण-ने मार्ग-रोध किया जिस से कि उस समय कृष्णदर्शन कर श्रीराधा का किलकिञ्चित् भाव प्रगट हुआ । गर्व, अभिलाष, रोदन, कुछ हास्य, असूया, भय तथा क्रोध ये सात भाव हर्ष के कारण एक ही समय में जब उदित होते हैं तब उस दशा को किलकिञ्चित् भाव कहते हैं । यहाँ श्रीकृष्ण-संदर्शन से हर्षोदय के कारण अन्तर में ईषत् हास्य, “कोई देख न ले” इस विवेचना से नेत्र के पांख अश्रु-जल से व्याप्त, जिस से अपने भाव-गोपन हेतु रोदन व्यक्त है । श्री कृष्ण के द्वारा मार्ग-रोध करने पर उन के नेत्रों का अन्तः भाग अरुण वर्ण हो गया जो क्रोध को प्रकट करता है । “रसिकता के द्वारा नेत्र परिवर्द्धित” यहाँ अभिलाष सुव्यक्त हो रहा है, “न जाने क्या होगा” इस भावना से चक्षुः संकुचित होना भय को व्यक्त करता है । पुनः मधुरता के द्वारा

चक्षुः का तारा जो व्याभुग्न अर्थात् ईषत वक्र हुआ है उस से गर्व एवं असूया प्रकट हो रहे हैं। स्तवकपक्ष में—“अन्तःस्मेरता” अर्थात् भीतर ईषत उत्फुल्लता है, “जलकण” इस शब्द से मकरन्द का उद्गम है, “किञ्चित् पाटलिता” इस शब्द से श्वेत एवं अरुण वर्ण का उद्गम होना है, “रसिकता” इस शब्द से मधुर रस का उद्गम है। “कुञ्चति” शब्द से कोरकता “एवं मधुर-व्याभुग्न-तारोत्तरा” शब्द से माधुर्य तथा कुटिलाकार व्यक्त हो रहा है ॥ १ ॥

मुरारी श्रीकृष्ण में राधिकानुराग जय प्राप्त हो रहा है जो कि विभु अर्थात् सर्वव्यापक होकर भी क्षण क्षण में वृद्धिशील है, जो गुरु अर्थात् सर्वश्रेष्ठ होकर भी गौरवचर्या अर्थात् सम्मान-नाद से रहित है और जो बार बार वक्रिमा-भाव को धारण करके भी विशुद्ध है ॥ २ ॥

नान्दीपाठ के बाद सूत्रधार रङ्गस्थल में आकर कह रहा है—अब सविस्तार नान्दीपाठ का प्रयोजन नहीं है ॥ ३ ॥

सूत्रधार—(चारों ओर दृष्टिपात करके) अहो ! मेरी इस मङ्गलाचरणचन्द्रिका से सन्दीपित मनोहर-भाव वाली साधु-मण्डली नन्दीश्वर पर्वत की उपत्यका में अर्थात् निम्नस्थ-भूमि में क्यों भ्रमण कर रही है ? ॥ ४ ॥

(पुनर्वार अवलोकन कर)

कोई भक्त तो लीला-श्रवणजात हर्ष से पुलकित होकर शरीर में प्रफुल्लता का विस्तार कर रहा है, कोई बहुकाल तक श्रीकृष्ण-विच्छेद का अनुभव कर शुष्कवदन एवं विवर्ण होकर विदीर्ण मन हो रहा है, कोई तदाकार-अन्तःवरण-वृत्ति हो जाने पर कृष्ण साक्षात्कार में तत्परिजनत्व-भावना से गर्व-मद एवं हर्ष को धारण कर गर्जन करता हुआ इधर उधर भाग रहा है और

कोई दर्शनानन्द जाड़्य-मोह से निष्पन्दता को धारण कर गिरता जा रहा है। अतः श्रीकृष्ण-विलास के उदय होने पर भक्तों की इसी प्रकार दशा होने लगी है ॥ ५ ॥

(क्षणकाल मन में परामर्श कर) हाँ इस का कारण जान गया, यह तो अतिश्रेष्ठ प्रेम मदिरा का उत्सव आडम्बर है ॥ ६ ॥

क्यों कि—प्रेमसमूह के उदय होने पर साधुगण अपनी भाववृद्धि एवं विकारों को स्थगित नहीं कर पाते हैं। जिस प्रकार कि-चन्द्रमा के उदय होने पर समुद्र अपनी वृद्धि तथा विकारों को सम्भारित नहीं कर सकता है। दोनों अश्रान्त, गम्भीर, दुरधिगमपार अर्थात् जिन के पार का अधिगम करना असाध्य, असीम अर्थात् जिन की सीमा का अवधारण नहीं किया जा सकता ऐसे हैं। वे साधुगण किसी से अहाय्य परम-मर्यादा तथा श्रीहरि के परमास्पद को धारण कर के भी आज अपनी वृद्धि एवं विकारों का सम्बरण नहीं कर पा रहे हैं।

(पुनः दृष्टिपात करके) हाँ ऐसा ही है। क्यों कि श्रीकृष्ण की केलिचर्या विश्वविलक्षण और अतिविमोहिनी है ॥ ७ ॥

(इस प्रकार परामर्श कर मस्तक घूर्णन पूर्वक धैर्यवलम्बन कर) अहो ? श्रीराधा के साथ गोपराजनन्दन की प्रेम-प्रवर्तित मधुर विबाद-चोष्ठी कर्णकुहर प्राप्त होकर आत्मारामगण को भी ब्रह्मानन्द से निवृत्त कर देती है ॥ ८ ॥

(अनन्तर नट प्रवेश कर आनन्द के साथ)

यह नाट्यकला—मुख, प्रतिमुख, गर्व, विमर्ष एवं निर्वहण नामक पञ्च सन्धि को तिरस्कार कर तथा उपन्यास, विन्यास, विरोध, साध्वस, समपर्ण, निवृत्ति एवं संसार इन सात अङ्ग से वलिष्ठ होकर मानो (स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग एवं वल इन सप्तांग राज्यश्री की भाँति) संस्कृत और

प्राकृतवाणी युगल से भूषित होकर शोभा प्राप्त हो रही है ॥ ९ ॥

सूत्रधार—भो पण्डित्य-पारदर्शिन नटाचार्य ! आपने सम्यक् रूप से ज्ञात किया होगा, मैं सुहृदों की अनुज्ञा प्राप्त कर दानकेलिकौमुदी नामक भाणिका का अभिनय करने के लिये उद्यत हो रहा हूँ । इसी लिये यहाँ निज अभीष्ट देवता का स्मरणात्मक मङ्गलाचरण पाठ करता हूँ ॥ १० ॥

(ऐसा कह कर अञ्जलि जोड़ कर)

जिन्होंने नाम के द्वारा रसज्ञों को आकृष्ट किया है, जो अपने चरित्र के द्वारा ब्रजराज नन्द एवं साधुओं के आनन्द को उद्दीप्त करने वाले हैं और जिन का रूप चराचर सब को उत्सव प्रदान करता है वे सनातनात्मा अर्थात् नित्य-विभ्रहवाले प्रभु श्री-कृष्ण जय युक्त हो रहे हैं । महाप्रभुपक्ष में—जिन की जिह्वा हरिनाम के द्वारा आकृष्ट है, जो अपनी शीलताचरण के द्वारा साधुओं में आनन्द उद्दीपन करते हैं और रूप नामक निज व्याक्त मुक्त में उत्सव-प्रदान करने वाले वे सनातनगोस्वामी जय युक्त हो रहे हैं ॥ ११ ॥

नट— भाव ! (अर्थात् हे सूत्रधार !) देखिये देखिये ? सङ्गीतनिष्ठ तृतीय-ग्राम के अध्यापक आप के गान्धर्वविद्याप्रबन्ध के द्वारा समस्त रसिक-चूड़ामणि मृगधर्म का अर्थात् चित्रा की एकाग्रता का अवलम्बन कर रहे हैं जो कि आत्म-विषयक अनुसन्धान में असमर्थ हो रहे हैं ॥ १२ ॥

सूत्रधार — प्रकटित - मनोज्ञा - अलङ्कारशालिनी (अर्थात् सङ्गीतनिष्ठ ललित अलङ्कार-युक्त गान्धर्व-गान जिसकी यह भाणिका महाविद्या रसिकेन्द्र-समूह की नान्दीमुखी अर्थात् मङ्गलाभिमुखिणी क्यों नहीं होगी ।

पश्चान्तर में—ललिता के द्वारा अलंकृत गान्धर्वा अर्थात् श्रीराधा

जिस से प्रकाशित होगी वह महती बिद्यावाली रसिकश्रेष्ठों की मङ्गलाभिमुखिणी क्यों नहीं होगी ॥ (नेपथ्य में) अहे नटाचार्य ! यथार्थ कह रहे हो, क्यों कि यह नान्दीमुखी आज रसिक वृन्द चूड़ामणि ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण में गान्धर्वविद्या को पक्षान्तर में राधिका को अर्पण कर आनन्दनप्रदायिनी होगी ॥

सूत्रधार—यहाँ वनदेवी वृन्दा सुबल के साथ क्यों आगमन कर रही है । अत एव नाट्यविषय में नटों को नियुक्त करने के लिये यहाँ से हम प्रस्थान करें । (ऐसा कह कर सूत्रधार एवं नटाचार्य दोनों प्रस्थान करते हैं) ॥ १३ ॥

यहाँ प्रस्तावना अर्थात् उपस्थित विषय का प्रस्ताव है ।
(तदनन्तर सुबल के साथ कथोपकथन करती वृन्दा प्रवेश करती है)

वृन्दा—(“अहे नटाचार्य ! उत्तम उत्तम” यह पूर्वोक्त वचन कह कर—) भो सुबल ! इस मङ्गलवार्त्ता में तुम को प्रफुल्लमुख क्यों नहीं देख रही हूँ ? ॥ १४ ॥

सुबल—इस प्रसङ्ग में ज्ञानशून्य के कारण मैं मुग्ध हो रहा हूँ अतः स्पष्ट करके कहो ॥ १५ ॥

वृन्दा—आज श्रीराधिका पार्श्वदेश में सखियों से परि-मण्डित होकर गुरुजन की अनुज्ञा से गोविन्दकुण्ड के तटवर्त्ति यज्ञ-मण्डप में हैयङ्ग-वीन (ताजा घी) बेचने के लिये जावेगी । इस बात को ज्ञात कराने के लिये पौर्णमासी के उपदेशानुसार नान्दीमुखी ने गोविन्द के निकट गमन किया है ॥ १६ ॥

सुबल—(आनन्द के साथ) निखिल माधुरी-श्रेष्ठा राधिका आज इस लघु-प्रयोजन के लिये क्यों गुरुजन के द्वारा अनुज्ञता हुई है ? ॥ १७ ॥

वृन्दा—मुनिजनों ने इस कार्य का उपदेश दिया है कि-जिस दिन जिस के द्वारा हवनयोग्य मनोहारी हैयङ्गवीन यज्ञ में उपहारी-

कृत होगा उस दिन उस की अभीष्टसिद्धि होगी । यह मख की प्रक्रिया है ॥ १८ ॥

सुबल—किस महान व्यक्ति का यह यज्ञ है ?

वृन्दा—सुविख्यात नाम वाले वसुदेवजी का ॥ १९ ॥

सुबल—मधुपुरी का त्याग कर उन्होंने क्यों इस बन के बीच यज्ञारम्भ किया है ?

वृन्दा—मरे कंस के जीवित रहते किस प्रकार मथुरा में यज्ञ-सिद्धि हो सकती । इसीलिये उन्होंने गर्ग के जामाता भागुरिजी को अपने प्रतिनिधि रूप में नियुक्त किया है ॥ २० ॥

सुबल—स्पष्ट जाना जाता कि यह यज्ञ आभिचारिक है ॥ २१ ॥

वृन्दा—नहीं नहीं, यह शान्तिकर यज्ञ है । जिस में अपने पुत्र से भी अधिक प्रिय मित्रपुत्र श्रीकृष्ण एवं निजपुत्र बलराम की शान्ति ही फल है ।

सुबल—(क्षणकाल चिन्ता करके कौतुक के साथ) ॥ २२ ॥

आज प्रियवयस्य श्रीकृष्ण की चिरकाल से हृदयस्थित गुरुतर केलिघटाधिकारित्व का अनुरूप दानग्रहण विलास लीला लालसा सिद्धि हुई ॥ २३ ॥

वृन्दा—सुबल ! हम सब के सम्बन्ध में यह दानलीला निधि की भाँति आचरित हो रही है । अतः आओ मानसगङ्गा के तट पर अवतरण करे (ऐसा दोनों करने लगे) ॥ २४ ॥

सुबल—मानसगङ्गा के दक्षिणपार्श्व में बन के बीच हंससमूह की ध्वनिघटा का श्रवण करो ॥ २५ ॥

वृन्दा—यह हंस समूह की ध्वनि नहीं है परन्तु पशुपाल-बालाओं की नूपुरध्वनि है । (पुनः आनन्द के साथ निरूपण कर) ॥ २६ ॥

हे सुबल ! दूर से देखो, रक्तवर्ण वस्त्र से आच्छादित मस्तक पर

कुण्डलाकार वेडा है, उस पर हैयङ्गवीन पूर्ण अचलायमान सुवर्णघट को धारण कर श्रीराधिका सखीगण से परिवृता होकर मानसगङ्गा तट पर स्वेच्छापूर्वक उपस्थित हो रही है ॥ २७ ॥

सुबल—अहो ! चञ्चल स्वभाववाली सहचरियों से बार बार श्रीराधा उद्दीप्ता हो कर अपनी मधुरिमा के द्वारा वृन्दाटवी को उज्ज्वलान्वित कर रही है जिस प्रकार कि इन्द्रधनुलता से जलद-मण्डली मण्डित होती है ॥

वृन्दा—श्रीराधा-रूपमाधुर्य-सम्बन्धी बचनों के उद्देश्य में आकस्मिक भाव का अवधारण कर रही हूँ । (ऐसा कह कर वदन अवनत पूर्वक लज्जा के साथ) ॥ २८ ॥

श्रीकृष्ण ने लज्जा त्याग कर ईर्ष्यावती अथच निजाभीष्ट लक्ष्मी का तृणाज्ञान पूर्वक परित्याग कर मल्लक्षण वृन्दा नामक जन को बहु सम्मान प्रदान किया है वह यह वृन्दा जिस के दासत्व में अवसर प्राप्त नहीं होता, इस पृथ्वी में कौन व्यक्ति उसराधा की प्रशंसा करने में समर्थ हो सकता है ॥ २९ ॥

जो भी हो, तो भी अपनी बाणी को सौरभशालिनी करने के लिये किञ्चित् राधा-सौरभ का वर्णन करूँगी ।

(ऐसा कह कर सुबल के प्रति दृष्टिपात करके) ॥ ३० ॥

श्रीराधा के बलवान मुखमण्डल से चन्द्रमा की अथवा पद्म की सुषमा तिरस्कृत हो जाती है इस प्रकार की प्रशंसा कितनी अपण्डितों से की जाती है । क्यों कि दूर से मुखमण्डल का अनुभव कर विशुद्ध सुधाशालिनी चन्द्रश्रेणी अथवा पद्मश्रेणी अपनी सौन्दर्य दर्पश्री का परित्याग पूर्वक विशीर्ण हो जाती है ॥ ३१ ॥

सुबल—उस का यह उत्कर्ष थोड़ा सा है ।

वृन्दा—सुबल ! तुम गोवर्द्धन पर्वत के ऊपर श्याममण्डप

के पीछे शिखण्डमौलि श्रीकृष्ण को ले जाओ । मैं इन गोपाङ्ग-
नाओं के मनोहर विलास कौशल को देखने के लिये धीरे से जा
रही हूँ । (ऐसा कह कर सुबल के साथ गमन करने लगी)

अब विष्कम्भक होता है -

(तदनन्तर सखीचतुष्टय से आसज्जिता राधा प्रवेश करती है) ॥३२॥

राधा--अहो ! बनश्रेणी की कैसी नयन-लोभनीयता है ।

(संस्कृतभाषा का अवलम्बन कर) ललिते ! देखो देखो, यह
बनश्रेणी, ध्वज-वज्र-अङ्कुश तथा पङ्कजादि चिन्हों से अङ्कित
पदपङ्क्ति के द्वारा उज्ज्वल हार ही है और नखर के द्वारा जिसकी
विकाशोन्मुख कलिकाएँ छिन्न भिन्न होकर भूतल में गिरी हुई हैं ।
जिस का अवलोकन कर मेरा अन्तर कम्पित हो रहा है ॥३३-३४॥

ललिता--(हँस कर) विशाखे ! देखो देखो, (ऐसा कह
कर संस्कृत में) जहाँ कानन में सुधा-सिक्त वेणुमाधुरी के द्वारा
पशु-पक्षियों के समस्त शारीरिक कर्मों का विस्मरण होता जा
रहा है, उन का मन आतद्द समाधि (चित्तौकाग्र्य से विरत
नहीं हो रहा है ॥ ३५ ॥

राधा--(स्वगत) स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि आज ब्रजेन्द्र-
नन्दन अलङ्कित-भाव से आकर हैयङ्गवीन उपहरण-कारिणी
हम सब के मार्ग का अवरोध करेंगे ॥ ३६ ॥

(प्रकाश्य में) हे सखि ललिते ! वर्त्तमान हम सब के इस
गमनावसर में कुछ हँसती हुई पौर्णमासी ने क्या कहा है ॥३७॥

ललिता--उन्होंने यह कहा है कि -आज तुम सब का कोई
अपूर्वलाभ उपस्थित देख रही हूँ ॥ ३८ ॥

राधा--ललिते ! तुम कथा-प्रसङ्ग में महातापसी सर्वज्ञा
पौर्णमासी को जिज्ञासा करो ॥ ३९ ॥

ललिता--कैसी जिज्ञासा ?

राधा--नान्दीमुखि आदि ने पूर्वजन्म में कैसा महाव्रत
किया है ?

ललिता--तुम ने उन की महाव्रत-कारिता का अवगत किस
प्रकार किया ?

राधा--हाय दुःख हाय दुःख, हे मुग्धे ! तुम इस प्रकार
जिज्ञासा कर रही हो, जिस का दुर्लभ-गन्धलेश तुम जैसे
व्यक्तियों को स्वप्न में भी सुदूर है, उस मन्द मन्द आन्दोलित
मकरकुण्डलों की किरण पराग कन्दली से सुन्दर मुखारविन्द का
अत्याश्चर्य महामाधुरी मकरन्द को जो नेत्र रूप भ्रमरों के द्वारा
निरन्तर पान कर रही हैं ॥ ४२ ॥

इसी लिये कह रही हूँ कि-उस परमाभीष्ट अलाभ से दुःख रूप
तुषानल से ज्वालायमान हम सब की उस महाव्रत में दीक्षा
उपयुक्त है क्यों कि नान्दीमुखि आदि की यह पदवी जिस
प्रकार भविष्यत् जन्म में दुर्लभ न होगी ॥ ४३ ॥

विशाखा--राधे ! नान्दीमुखी आदि से तथा गोपकन्यागण
से अथवा अविशेष समुदाय गोकुलवासिजन से कोई एक महा-
व्रतकारिणी महाभागिनी लक्षित हो रही है ॥ ४४ ॥

राधा--(उत्कण्ठा के साथ) हे विशाखे ! निश्चय करके
कहो कि वह गुणवती-शिखामणी कौन है ?

ललिता (स्वगत) तुम से द्वितीय व्यक्ति कौन है ?

राधा----सखि ! मैंने जान लिया, जान लिया, सत्य कहती
हो, (संस्कृत में) अन्य कोई नहीं है, एक मात्र मुरली की प्रशंसा
की जा सकती है क्यों कि उस ने श्रीकृष्ण अवरामृत-माधुरी के
पान द्वारा उन्मत्ता होकर केलि रूप मधुरध्वनि कर समस्त गोकुल
को व्याकुलित कर लिया है ॥ ४५-४६ ॥

ललिता--(हास्य पूर्वक कहने लगी) सत्य, मुरली गौरवणी

है, वह अपनी ध्वनि के द्वारा धीरगण के मन को तरलित करती है, पुनः वह उत्तम वंशोत्पन्ना है अर्थात् त्वकसार प्रयुक्त सार विशिष्टा है। पुनश्च महारसशालिनी एवं माधुर्य्यवर्षिणी है ॥४७॥ राधापक्ष में-मुरली कूजन के द्वारा जिस का धीरमन चञ्चल हो रहा है, जो गौरी अर्थात् गौरवर्णा है, जो सद्वंशोत्पन्ना है पुनः जो रासिका है और माधुर्य्यवर्षिणी है ॥ ४७ ॥

राधा—अहे क्यों हँसी करती हो ? आत्मीयजनो के प्रसाद से मन्दभाग्य इस व्याक्ति के द्वारा उनके मुख-मण्डल का दो तीन बार मात्र दर्शन हुआ है। परन्तु स्वभावसिद्ध मादकता प्रयुक्त मधुर माधुरी मधु ने हृदय को उन्मथित कर समस्त विस्मरण कर दिया। अतः ध्यानयोग से भी उन का दर्शन दुर्लभ हो रहा है ॥४८॥

(ऐसा कह कर औत्सुक्य प्रकाश पूर्वक संस्कृतभाषा में) हे कृशोदरि सखि ! हम सब वेणुकुल में जन्म प्राप्त करने के लिये तपस्या करेंगी, वेणुजन्म को सामान्य मत समझो, सब से वेणु जन्म ही उत्कृष्ट है क्यों कि यह मुरली बहु तपस्या के द्वारा मुकुन्द की विम्बाधर-मधुरिमा को अङ्गीकार कर रसास्वादन कर रही है ॥

वृन्दा—(प्रवेश करके) सखि ललिते ! क्यों कथाभिनिवेश से संरन्ध हृदया हो कर इन्द्रध्वजवेदी की पदवी में आरोहण-शील अपने को नहीं जान रही हो ॥ ४९ ॥

सब—(मुख फिरा कर) सखि ! सत्य कह रही हो, क्यों कि हम सब गोवर्द्धन पर्वत के पृष्ठदेश में आयी हुई हैं। अतः गोवर्द्धन की दक्षिणादिशा में गोविन्दकुण्ड के तटवर्त्ति मार्ग का अनुसरण करें (ऐसा कह कर वेंसा ही करने लगीं)

वृन्दा—(निवारण कर) चम्पकलते ! देख देख ॥ ५० ॥ विधाता ने निश्चय प्रभु श्रीकृष्ण के परम सन्तोष विधान के लिये

उन की निखिल प्रेयसीवर्ग से अत्यद्भुत विविध-माधुर्य्य का आकर्षण कर श्रीराधा का निर्माण किया है। क्योंकि श्रीहरि अन्य नारी स्पृहा का परित्याग कर केवल श्रीराधा में ही रमण करते रहते हैं ॥ ५१ ॥

राधा—(दक्षिण दिशा में दृष्टिपात करके) अहो ! मानस-गङ्गा के प्रफुल्लित कमल-समूह में निपतित भ्रमरों की कलध्वनि की कैसी कोमलता है ? ॥ ५२ ॥

वृन्दा—(अभिलाष के साथ) अहो सम्मुख में कमलपुञ्ज में मत्ता मधुकर का अवलोकन करो, पुष्पपरागों के द्वारा इस के शरीर का उत्तरभाग पीतवर्ण हो रहा है वह बार बार घूँमता हुआ कौतुक पूर्वक मधुकर रमणीसमूह का संरोध कर ध्वनि-धृष्टता के द्वारा मस्तक कम्पन कर बिहार कर रहा है ॥ ५३ ॥

राधा—(स्वगत) निश्चय वृन्दा ने कुछ मन में विचार कर यह कहा है (प्रकाश्य कर) हे वृन्दे ! ये समस्त कुमुमकीड़े भ्रमरियाँ धन्य हैं क्यों कि निरन्तर कान्त के साथ क्रोड़ा करती हैं, सूर्योपासका मन्दभागिनी हम सब के सम्बन्ध में दूर से भी क्षण काल कान्त-सन्दर्शन सुदुर्लभ हो रहा है ॥ ५४ ॥

(संस्कृत में) हे सखि ! हमारे दोनों श्रवण माधव-गुणानुवाद का श्रवण नहीं कर रहे हैं। अतः इन का वधिर होना उत्तम है। दोनों नेत्रों ने उन का अवलोकन नहीं किया है। इसी लिये उन का अन्धत्व होना उचित है ॥ ५५ ॥

वृन्दा—हे सखि राधे ! तुमको मन्दगामिनी क्यों देख रही हूँ ?

ललिता—सखि राधे ! तुम तो दिन रात दिव्यलीला के द्वारा विहार करती हो तो भी क्यों निर्व्वेद प्रकाश करती हो ?

वृन्दा—हे राधे ! तुम तो दैयङ्गवीन की भाँति कोमलाङ्गी

हो, किस प्रकार हैयङ्गवीन-कलश को वहन कर चल रही हो, बड़े खेद की बात है, तुम्हारे मस्तक में मल्लिपुष्प का अर्पण करने पर व्यथा-बोध होता है, अहो आज उस मस्तक पर कलश देख रही हूँ, कृपा करके मेरे मस्तक पर हैयङ्गवीन-कलसा को अर्पण करो ॥ ५६-५७ ॥

राधा—सखि ! कलसी भार मुझे मन्थर नहीं कर रहा है। मेरे मना करने पर भी ललिता ने बलपूर्वक इन भूषणों को पहराया है। अतः अलङ्कारभार से मैं मन्थर हो रही हूँ ॥ ५८ ॥

विशाखा—राधे ! कुछ समय अवस्थान करो, मैं भली भाँति भूषण भार को उतार देती हूँ। (ऐसा कह कर यथोचित भूषणों को उतारने लगी) ॥ ५९ ॥

वृन्दा—जब कि अनलङ्कृता श्रीराधा का सन्दर्शन कर चन्द्रावली की सखी पद्मा अति लज्जित हो जाती है तब मणिमय-भूषणरचना की आवश्यकता क्या है ॥ ६० ॥

राधा—हे वृन्दे ! इस यज्ञ में हैयङ्गवीन उपहरण-कारिणी हरिणनयना हम सब का सर्वाङ्गयोग्य भूषणसमूह का लाभ होगा मुनिजनों से ऐसा सुना गया है ॥ ६१ ॥

वृन्दा—केवल भूषणों की उपलब्धि ऐसा नहीं परन्तु यज्ञ में घृत लेकर गमन के समय अपनी अभीष्टपूर्ति भी। अतः अभीष्टप्रदायक गोवर्द्धनस्थ ब्रह्मकुण्डादि तीर्थों को अञ्जलि बाँध कर प्रार्थना करो (ऐसा सब करने लगी) ॥ ६२ ॥

चम्पकलता—सखि चित्रे ! ब्रह्माण्ड घट के स्रष्टा कमलयोनि ब्रह्मा के कुण्ड के द्वारा गोवर्द्धनशिखर की भूमि दक्षिणदिशा की ओर शोभायमान हो रही है ॥ ६३ ॥

चित्रा—सखि ! इसी स्थल पर भक्तवत्सल हरिराय नामक नारायण-मूर्ति निवास कर रही है ॥ ६४ ॥

वृन्दा—देखो देखो, हे सखि ! यह गोवर्द्धन बहुशिरवाला अनन्तदेव से भी विशेष प्राप्त हो रहा है क्यों कि अघनाशन श्रीहरि इस के क्रोडदेश में मस्तक में तथा उदरभाग में प्रेयसियों के साथ अद्भुतलीला का बिस्तार कर रहे हैं ॥ ६५ ॥

ललिता—(श्रीराधा का अवलोकन कर संस्कृत में)
हे गौरि ! गोवर्द्धन की सौरभयुक्त निविड शोभाशालिनी विशाल पाषाणखण्ड के प्रति दृष्टिपात करो, हे सखि ! यहाँ रसिकेन्द्र ने बैठ कर तुम्हारे वक्षःस्थल पर मृगमद पङ्क के द्वारा सुन्दररूप में तिलक रचना की है ॥ ६६ ॥

चम्पकलता—(परस्पर में मन्त्रणा कर के संस्कृत में) सखि ! सुनो, ऊपर में वलाका अर्थात् वकपङ्क्ति शोभायमान हो रही है, और चारों ओर विद्युत्तविलास हो रहा है, मेघ अपनी कान्ति के द्वारा पर्वतशृङ्ग के नीलमण्डप को दृगुणा शोभित कर रहा है। अर्थान्तर-श्रीकृष्ण गुञ्जाहार एवं पीताम्बर पहन कर अपनी कान्ति के द्वारा गोवर्द्धन उपरिस्थित नीलमण्डप की शोभा को द्विगुण बढ़ा रहे हैं ॥ ६७ ॥

ललिता—(आनन्द के साथ) चम्पकलते ! सत्य कहती हो, यह मेघ नहीं है, परन्तु कण्ठ में लम्बित विस्तीर्ण हार-वाले पीताम्बर, पर्वत के कुञ्जप्रदेश का अबलम्बन कर विराजमान हैं। अतः हम सब का मनोरथवृक्ष पुष्पित हुआ है ॥

राधा—(वृन्दा के प्रति दृष्टिपात करके कम्पितशरीर से संस्कृत में) ॥ ६८ ॥

हे सखि ! सम्मुख में पर्वत शिखर में स्थित होकर आकाश की गौरवर्ण कान्ति को अङ्गीकार कर जगत रूप वेणुवृक्ष में कन्दर्प-ध्रुमि स्वरूप घूण समूह को अर्पण कर तथा धैर्यरूप अन्धकार का भेदन कर नीलोत्पलनयनाओं के अमृतनिधान नेत्रबन्धु अर्थात्

नेत्र शीतलकारी किस अद्भुतचन्द्र का उदय हो रहा है ॥

बृन्दा—सखि राधे ! सुनो, ॥ ६६ ॥

त्रिभुवन की समस्त मृगनयनाओं के वाञ्छितार्थ पूरण के लिये समर्थवान् भुजद्वय का आन्दोलन कर कुलाङ्गना ब्रजवालाओं की मदनवेदना का-उन्मादन रूप व्रत प्रणयि वक्षःस्थल के द्वारा शोभायमान रसिकमौलि श्रीकृष्ण उदय प्राप्त हो रहे हैं ॥ ७७ ॥

राधा—(विस्मय के साथ संस्कृत में) सखि ! श्रीहरि बहु बार हमारे नेत्रपथ में पथिक हुए परन्तु पहले कभी इस प्रकार अपूर्व मधुरिमा नहीं देखी, जिस की एक अङ्ग की किञ्चिन्मात्र शोभा का पान करने में नेत्र समर्थ नहीं हो रहा है, अब यह नेत्र एक ही समय में सर्वाङ्ग-शोभा को किस प्रकार पान कर सकता है ॥ ७१ ॥

बृन्दा—हे राधे ! तुम जब जब सम्मुख में माधव को देखती हो, तब तब उन को अपूर्व करके कहती रहती हो । क्या वे तुम्हारे लिये वास्तविक नित्यनूतन हैं अथवा अनुराग एवं उन्माद के कारण इस प्रकार नेत्रद्वय विस्मयापन्न हो रहा है ? ॥

(तदनन्तर मधुमङ्गल, सुबल, अर्जुनादि सखासमूह से उपास्यमान होकर नान्दीमुखी को जिज्ञासा करते करते श्रीकृष्ण उपस्थित हुए) ॥ ७२ ॥

कृष्ण—(उत्कण्ठा के साथ) अहो ! गोवर्द्धन पर्वत के समीप में उपस्थित, कर्णकुण्डलस्थ मणिशिला पर कटाक्षवाणों को शणित करने वाली, भुधनु-कम्पन से सर्वस्व हरण सूचन-कारिणी यह रमणी कौन है ? जो कि निजविम्भ्रम के द्वारा सर्व जगद्धैर्यसर्वस्वहारी मुझ को भी व्यग्र कर रही है ॥ ७३ ॥

(पुनर्वार निरूपण करके) हाय ! किस प्रकार से वह प्रियतमा मेरी हृदयकपोतपालिका की भूषण स्वरूप पारावती हुई ? (ऐसा

कह कर नान्दीमुखी को अभिनन्दन कर आनन्द के साथ) जो उच्च शब्द-सम्पत्ति के द्वारा बसन्तादिराग का वर्द्धन कर कर्ण प्रदेश के अलङ्कार का बिस्तार कर रही है, जो मधुराम्फुटध्वनि के द्वारा युक्त है वह षड्जादिस्वरों से अधिक परिवर्दिनी अर्थात् बीणा प्राप्त है । अर्थान्तर में-जो मुक्ताहार की शोभा के द्वारा अपने अनुराग का वर्द्धन कर कर्णदेश की शोभा विस्तार कर रही है, जो चौषठकला से अश्रित (युक्त) है आज हमे बह राधा परिवादकारिणी की भाँति प्राप्त हो रही है ॥ ७४ ॥

नान्दी—हे गोकुलानन्द ! तुम्हारे पार्श्वस्थित ये समस्त गोपिकाएँ जिस प्रकार मुझ को न देखें उस प्रकार प्रच्छन्नरूप में ठहरती हैं । (ऐसा कह कर छिप गई) ॥ ७५ ॥

कृष्ण—हे सखागण ! तुम सब शीघ्रता पूर्वक महाघट्ट के अधिकार सूचक शृङ्गवाद्यादि करो, मैं भी निजविम्बाधर में वंशी अर्पण करता हूँ । (सब वेसा ही करने लगे)

बृन्दा—(स्वगत) क्यों ये समस्त गोपिकाएँ केलिमुरलीध्वनि को श्रवण कर घूर्णित मस्तक होकर वृक्षों को धारण कर रही हैं-वेणु की यह मधुरध्वनि तरु-लताओं को प्रफुल्लित कराने के लिये औषाध विशेष है और मानो कोकिलादि ब्राह्मणबालकों के कुटु रूप वेदपाठ-पारायण के स्थागित करण में सन्ध्याकालीन मेघ-गर्जन है, चन्द्रवदना गोपबालाओं की कामाग्न-शिखा का उद्दीपन में मन्द मन्द बहने वाला पवन है और श्रीराधा के धैर्यरूप पर्वतराज को दमन के लिये वज्र स्वरूप है । इस प्रकार से वेणुध्वनि विलास कर रही है ॥ ७६ ॥

कृष्ण—(श्रीराधा के प्रति कटाक्षपात कर आनन्द के साथ) अहो ! कन्दर्पवान्धव अर्थात् यौवन वयस के द्वारा आज श्रीराधा के अङ्ग उल्लास युक्त होने पर मुखकमल कुपा, औदार्य एवं

माधुर्यादि गुणयुक्त नर्मवाक्य के साथ सख्य विधान करने को इच्छा कर रहा है, दोनों नेत्र क्रम से कुटिल-निरीक्षण के साथ मैत्रीलाभ के लिये बाँझा कर रहे हैं, और पदयुगल लीला-युक्त मन्दगति के साथ सङ्गविधानार्थ अभिलाष कर रहे हैं ॥ ७७ ॥

राधा—(यत्नता से भावगोपन का अभिनय पूर्वक वाम-स्कन्ध अन्य ओर कर संस्कृत में) ॥ ७८ ॥

भूमण्डलवर्तिनी युवतिओं के नयन रूप भृङ्गों के द्वारा नीलोत्पल-दल से अधिक शोभा वाली अपनी अङ्गशोभा का आस्वादन करा कर, मत्ता हस्तिशावक के लीलातरङ्ग उलंघन कारी गोवद्धेन पर्वत स्थित यह अरण्यधूर्त्त मेरे धैर्य का ग्रास कर रहा है।

कृष्ण—(पर्वतशृङ्ग से अवतरण पूर्वक राधा को देख कर आनन्द के साथ) श्रीराधा अपने स्थूल पयोधरयुगल में हार को स्थान देकर मानो उस के प्रति अनुग्रह बिस्तार कर रही है, उस ने बल करके ख्यात कुटिल केश को चूड़ामणि अर्पण किया है, मृगनयनी उस के नेत्र से कर्ण तक कज्जल विन्यस्त हो रहा है मानो दोनों नेत्र ईर्ष्या प्रकट कर सारल्य परित्याग कर कौटिल्य-भाव का अवलम्बन कर रहे हैं ॥ ७९-८० ॥

ललिता—(अपवार्य) राधे ! जिस व्यक्ति को पर्वतशृङ्ग से अवतरण करना देख रही हो वह हठ पूर्वक कुहक प्रदर्शन कर किसी वाणिज्य महास्वार्थ लाभ के लिये आ रहा है। अतः अन्त-देखें की भाँति विश्वस्ताचित्त से यहाँ से चली चले नहीं तो यह हम सब को उद्देगान्वित करेगा ॥ ८१ ॥

राधा—साख ! धीरे धीरे चलो, क्यों कि यह पर्वततट स्फुटित प्रस्तर समूह से विरचित है ॥ (ऐसा कह कर दृष्टिपात पूर्वक गमन करने लगी) ॥ ८२ ॥

कृष्ण—सखे सुबल ! ये समस्त रमणियाँ क्यों हम सब की

अवज्ञा करती, विलास के साथ नूपुर झनझनाती, मनोहर आलाप करती जाने को प्रवृत्ता हो रही हैं। अतः अर्जुन के साथ शीघ्र इन को प्रत्यावर्त्तित करो ॥ ८३ ॥

सुबल—(शीघ्रता से अर्जुन के साथ परिक्रमण कर) अहो ! आश्चर्य ! तुम सब क्यों गर्व के साथ घट्टचत्वरनाथ का अनादर कर घृतविक्रयार्थ चली जा रही हो, अतः निवृत्ता होकर सुन्दरता पूर्वक हम सब को प्रबोधित करो।

सब—(अवहेला पूर्वक अनसुनी की भाँति चलने लगीं)

सुबल—(वेग से दौड़ कर) अहो, आत्ममाहात्म्य का विस्तार मत करो शीघ्र लौट कर आजाओ ॥ ८४ ॥

सब—(निवेद की भाँति प्रत्यावर्त्तन कर के) अहे ! क्रूर-भाषिन् ! क्यों तुम हम सब को परावर्त्तित कर रहे हो ? ॥ ८५ ॥

सुबल—अहे ! पहले तुम सब पृथ्वीपर मस्तक रख कर महाघट्टदानीन्द्र को प्रणाम करो ॥ ८६ ॥

विशाखा—(ईषन् हास्य के साथ) अहो ! क्या ब्रजराज-नन्दन हमारे वन्दन योग्य नहीं हैं ? अवश्य हो सकते थे। परन्तु भगवती पौर्णमासी ने निषेध किया कि-इस अतौकिक-यज्ञ में हैयङ्गरीन उपहरणादि में तुम सब ब्रतधारण करने वाली हो अतः ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रणाम मत करना ॥

अर्जुन—विशाखे ! यह हमारे वृन्दावन के राजा महा-दानीन्द्र हैं। इन्होंने अब ब्रतारम्भ किया है। अतः ब्रतधारण-वालाओं के द्वारा ब्रतधारणकारी को प्रणाम करने पर कोई दोष नहीं है ॥

ललिता—वह ब्रत कैसा है ?

कृष्ण—(ईषन् हास्य के साथ) वस्त्रादि उपार्जन में अक्षम अर्जुन ब्राह्मणों को बस्त्रदान रूप महाब्रत।

पक्षान्तर में-अर्धवृद्ध संख्यक युवतियों के ओष्ठाधरखण्डन रूप महाव्रत ॥ ८६ ॥

ललिता—घट्टाधिकारिता उचित हो रही है क्यों कि इस प्रकार महापदवी-समारोहण के बिना अपनी व्रतरक्षा दुष्कर होती है ॥

कृष्ण—(कुछ हँस कर सम्मुख में दृष्टिपात करके)

सखे मधुमङ्गल सुनो ॥ ६० ॥

बार बार पतित स्वेदाविन्दु के द्वारा स्वर्णपदक अभिषिक्त हो रहा है। अहो ! राधा तो ललितादि पञ्चजन सखियों के बीच में विराजमान है वह किस प्रकार स्तम्भित होकर पञ्चालिका अर्थात् पुतली धर्म को प्राप्त हो रही है ॥ ६१ ॥

मधुमङ्गल—(श्रीकृष्ण के कान में निभृतोक्ति-मुद्रा अर्थात् छलाभिनय कर उच्चस्वर से) भो प्रियवयस्य ! भाग्यवस बड़े हो, देखो श्रीराधिका भय के कारण गठ्ठितसखियों के साथ स्तम्भित हो रही है ॥ ६२ ॥

वृन्दा—(मन्दहास्य के साथ) अहे पुरुषकुञ्जर ! तुम्हारा मध्यभाग सिंह के समान है, क्रोडदेश वराह की भाँति काठन है, दानों भुजा सपे के समान हैं और नेत्र व्याघ्र की भाँति है। अतः यह भीरुस्वभाव वाली हरिणाक्षी राधा तुम से क्यों भयभीत नहीं होगी ॥ पुण्डरीक्ष—अर्थात् कमलनयन ! पक्षान्तर में व्याघ्रनयन। “व्याघ्रेऽपि पुण्डरीको ना इत्यमरः” ।

ललिता—“ललिता के द्वारा सुरक्षित गोपालिकाओं को भय” यह शब्द कभी किसी के कर्णकुहर में प्रवेश नहीं हुआ है। तब तो गोकुलरक्षण-व्रतधारि इस राजकुमार के समक्ष हम सब को भय कैसा ? ॥ ६४ ॥

कृष्ण—हे भूषिताङ्ग ललिते ! उत्तम कह रही हो, अतः

इस को सखीमण्डलके साथ पाण्डुर अर्थात् सफेदपोलामिश्रितवर्ण की शिलापर उपवेशन करा कर समुदाचार का अवधारण कराओ।

ललिता—गोकुलयुवराज ! देखो, प्रचण्डरश्मि वाला भगवान् तपनदेव गगनमण्डल में आरोहण कर रहा है, अतः शीघ्र यज्ञ-मण्डप प्राप्ति के लिये तुम्हें जिज्ञासा करती हूँ ॥

कृष्ण—(नेत्र घूमा कर मधुमङ्गल को संकेत करने लगे) ॥ ६६ ॥

मधुमङ्गल—ललिते ! आज तुम सब सङ्गकाल में अर्थात् प्रातःकाल के बाद तिन मुहूर्त्त समय पर आई हो। तब तो तुम सब से शुल्क ग्रहण करना उचित नहीं है। परन्तु हैयङ्गवीन वहन भार से तुम सब की कटि टेढ़ी हो रही है। अतः इस घाटि में आकर कुछ काल विश्राम कर स्निग्धता सम्पादन करो। और अवज्ञा-जनित दोष के निवारण के लिये आपकी सम्मति से किञ्चित् प्रदान कर यथा सुख से प्रस्थान करो ॥ ६७ ॥

विशाखा—अहो गोवर्द्धन में दानधाटी यह पहले तो कभी नहीं देखी ॥

कृष्ण—विशाखे ! सत्य कहती हो, तुम जैसे जन यह सब किस प्रकार देख सकते हैं क्यों कि अभी भी देखती हुई नहीं देख रही हो ॥

ललिता—(परस्पर में मन्त्रणा करके) अहे सखियों ! पहले तो मधुर सम्भाषण उचित है ॥ ६८ ॥

सब—ठीक कह रही हो,

ललिता—(प्रणय के साथ निकट में जाकर) हे गोकुलानन्द ! हम सब एक गाँव में निवास करती हैं और विशुद्ध स्वभाव वाली हैं। सुयशस्वि साधुशिरोमणि तुम जैसे व्यक्ति का प्रातिकूल्याचरण उचित नहीं है। अतः शीघ्र आज्ञा प्रदान करो ॥ ६९ ॥

कृष्ण—(करुणा प्रदर्शन की भाँति) अहे सुकुमारि !
दुरन्त शासन वाले अटवी-चक्रवर्त्ति के द्वारा अति आग्रह पूर्वक
मैं इस भयानक घाटिकर्म में निपुक्त हो रहा हूँ । मैं अस्वतन्त्र
हूँ कुछ नहीं कर सकता ॥

विशाखा—क्या कंस के द्वारा ?

कृष्ण—नहीं नहीं ।

विशाखा—तो किस के द्वारा ?

कृष्ण—जिस की क्रीड़ाकटाक्ष-छटा से कंसादि पराजित हुए
हैं उस महामन्मथ के द्वारा ॥ १०० ॥

ललिता—(चकित होकर आश्चर्य के साथ) अहो ! कहीं
तो मन्मथनामक चक्रवर्त्ती नहीं सुना ॥ २०१ ॥

मधुमङ्गल—(अट्टहास्य के साथ) ही ही, आश्चर्य आश्चर्य,
इन्होंने महामन्मथ का नाम सुना ही नहीं । महाकटक में प्रमद-
मञ्जरी नामक जिस की राजधानी है । मधुमङ्गल, सुबल एवं
विजयादि जिन के अमात्य श्रेष्ठ हैं, और उत्तम रमणियाँ जिस
का विहारस्थल है ॥

कृष्ण—अधिक तो कहना क्या है, यह समस्त कुरङ्ग, भृङ्ग,
कोकिलादि निरन्तर आदेशवर्त्ती होकर जिस का दूतत्व अङ्गीकार
कर रहे हैं ॥ १०२ ॥

चम्पकलता—(सशब्द हास्य के साथ) ललिते ! यह
ब्रजेन्द्रनन्दन दानापहरण चेष्टाशील है । इन के साथ विरोध
करना उचित नहीं है क्यों कि चोरचक्रवर्त्ती इन के चारगण चारों
ओर घूम रहे हैं ॥

कृष्ण—ललिते ! तुम नीति-तन्त्र को जानती हो, अतः
हैयङ्गवीन कलसों को उतार कर शुल्क कार्य का निर्वहण करो ॥

विशाखा—हे मोहन ! घाटी-प्रांगन में कुलाङ्गनाओं का तिल

मात्र काल-विलम्ब विडम्बन है ॥ १०३ ॥

चित्रा—(सरलता के साथ) हे गोकुलानन्द ! यथार्थ
श्रवण करो, घाटीदान विषय में एक कपर्दक प्रदान करने पर भी
यज्ञीय घृतादि अशुद्ध हो जाता है ऐसा सुनने में आता है ।
नहीं तो पञ्चताम्रिका (बीस कौड़ी) प्रदान में हम कातर क्यों
होती ॥ १०४ ॥

ललिता—सखि राधे ! तुम महाभार से क्लिष्ट हो गयी हो,
अतः यहाँ एक दण्ड विश्राम के लिये घड़ा को उतारो (ऐसा कह
कर सब घड़ा उतारने लगीं)

कृष्ण—सखे सुबल ! तुम्हारी यह सुहृज्जन ललिता आज
दानघाटी में प्रथम अतिथि हो रही है । अतः यथेष्ट रूप से
अपूर्व माधुर्य शालि पांच पर्णवीटिका के द्वारा इस का सम्मान
करना उपयुक्त है ॥

सुबल—(रत्न-संपुट उद्घाटन पूर्वक) ललिते ! पञ्च
ताम्बूल बीड़ी ग्रहण करो (ऐसा कह कर सम्मुख में रखने लगा)

विशाखा—सुबल ! ताम्बूल से प्रयोजन नहीं है, क्यों कि
ये सब अपने को व्रतधारिणी बता रही हैं ॥ १०५ ॥

ललिता—सुबल ! मेरे मुख को क्या देख रहे हो, अविश्वा-
सिनी विशाखा मेरे पर कोप कर यह कह रही है कि घाटीपालक
समस्त टकवटिका अर्थात् सर्वस्व अपहारार्थ मनो-देह-इन्द्रिय
मोहनकारी औषध विशेष का प्रयोग करते हैं । अतः इन के
नागवल्ली पल्लव का प्रयोजन नहीं है ॥ १०६ ॥

मधुमङ्गल—ललिते ! आप सब स्वभाव से विम्बोष्ठी हैं,
अर्थात् सब के होठ में स्वभावतया रक्तिमा मौजूद है । अतः
ताम्बूल का प्रयोजन नहीं है, आप सब ने कब ताम्बूल का भक्षण
किया है ? अर्थात् ताम्बूलभक्षण का अभ्यास नहीं है तो भी

कल्याणार्थ इस अवशिष्ट पञ्चवीटिका को ग्रहण करो ॥ १०७ ॥

कृष्ण—(ताम्बूल का उपयोग कर चवित ताम्बूल प्रदान करने की इच्छा करते हुए भ्रूभङ्ग के साथ) राधे ! यह ताम्बूलामृत द्विज संस्कृत है, इस के आस्वादन में शङ्का मत करना । तुमने पहले कभी इस का आस्वादन नहीं किया है । अतः सम्पुट से ताम्बूलवीटिका को ग्रहण करो ॥ १०८ ॥

ललिता—लक्ष-कामुकी उपभोग से पवित्र मुखविम्ब के उद्गार को यदि मेरी सखी ग्रहण नहीं करती तो वह अपनी आत्मा को पवित्र किस प्रकार कर सकती ? ॥ १०९ ॥

सुबल—ललिते ! हम सब विपरीतकारिणी हैं अर्थात् अनादर पात्र में आदर करने वाली हैं । जो भी हो सौभाग्य वश हम सब तुम सब से उपदेश प्राप्त हुए हैं, अब दान का अनुमोदन करो ॥

चम्पकलता—क्या तुम सब ब्राह्मण हो जिस कारण तुम सब को दान देने के लिये अनुमोदन करेंगी ॥ ११०-१११ ॥

मधुमङ्गल—चम्पकलते ! मैं कुलीन याज्ञिक ब्राह्मण हूँ इस लिये पेट भर कर मिसरी के साथ मक्खन प्रदान करो ॥ ११२ ॥

विशाखा—सखि चम्पकलते ! ये सब केवल पेट भरने वाले हैं, घाटी छल से भिक्षा माँग रहे हैं । अतः इन को बीस कौड़ी प्रदान करो, जहाँ तहाँ चने कीन कर चबा चबा कर गोचारण करें ॥ ११३ ॥

कृष्ण—सखे ! उदरभर परायण ! घाटीदानग्राही हम सब में तुम महापात्र (अमाप्य) हो, अतः आज हैयङ्गवीन के द्वारा उदरपूर्ति में भी तुम्हारी दरिद्रता व्यक्त हो रही है ॥ ११४ ॥

राधा—हे ललिते ! ये सब महादानी आप की प्रशंसा कर रहे हैं । अतः स्पष्ट जाना जाता है कि परमोत्तम वर्णवाली तुम सब को सर्वोत्कृष्ट पदार्थ प्रदान करेंगे ॥ ११५ ॥

कृष्ण—(ईषत हास्य करके) हे वरवर्णिनि ! सत्य कहती हो, अतः यह निज महावैभव का प्रदान करूँगा (ऐसा कह कर आलिङ्गन मुद्रा से सुबल को आलिङ्गित करने लगे) ॥ ११६ ॥

राधा—(रोमाञ्च के साथ आत्मगत संस्कृत में) हे सुबल ! पहले तुम ने किस सिद्धक्षेत्र में कितनी तपस्या की है ? क्यों कि श्रीकृष्ण हँसते हँसते विपुल पुलकोल्लास प्रकाश के साथ गुरु-जनों के समक्ष भी विस्तीर्ण उत्सङ्ग (क्रोध) में तुम को रख कर आलिङ्गन एवं प्रणय वश तुम्हारे स्कन्धदेश में भुजग समान भुजद्वय अर्पण कर रहे हैं ॥ ११७ ॥

(ऐसा कह कर क्रोधाभिनय करती भ्रूद्वय कुटिली कर प्रकाश्य से) ललिते ! हम जैसी पतिव्रताओं में तुम्हारे कुञ्जराज की विदूषकता (लाम्पट्य) दृष्टि हुई । जो भी हो, तुम अनर्थ-कारिणी हो, यहाँ बल पूर्वक हमें लाई हो । (ऐसा कह कर ललिता को तिरस्कार करने लगी) ॥ ११८ ॥

ललिता—(छल पूर्वक संस्कृत में) हे कुहुकण ! (कोकिल) तुम निकट में नवमुकुलिता आम्रलताओं को देख कर भी काप-टयालम्बन पूर्वक यहाँ से अति धृष्टता से क्यों भागती हो ? इस निग्धा सौरभवती आम्रलता ने भ्रमर को पति रूप से आश्रय कर लिया है । अतः तुम उत्कण्ठा का परित्याग करो, तुम्हारे लिये यह सुलभ नहीं है ॥ ११९ ॥

विशाखा—(संस्कृत में) विशुद्ध चरितबालों को कुटिलजन-संसर्ग से शीघ्र ही वैगुण्य संघटन होता है । इसका प्रमाण यह कि-धनु में स्थित वाण गुण से विच्युत होकर शीघ्र दूर में चला जाता है ॥ १२० ॥

चित्रा—बड़ा खेद है, हे घट्टाव्यक्ष ! यदि अभीष्ट साधन में इच्छा रखते हो तो बहुजनों से युक्त यमुनाघाट में चत्वर

(चवूतरा) बनाना उपयुक्त था ॥ २२१ ॥

चम्पकलता—अयि विशुद्धचित्तावाली सखि चित्रे ! ये सब शुल्क उपलब्ध से लुण्ठन करने के लिये इस दुर्गम वन में अवस्थान कर रहे हैं, अतः तुम सब शान्त हो ॥ १२२ ॥

कृष्ण—सखे सुबल ! चित्रा मित्र की भाँति आचरण कर रही है, अतः आज गोष्ठ के गोपुर (प्रधान द्वार) में घट्टचत्वर निर्माण करो, क्यों कि इस वन के बीच ये सब चञ्चलाक्षी रमणियाँ चारों ओर पलायन करेंगी ॥ १२३ ॥

सुबल—प्रियवयस्य ! सत्य कह रहे हो, देखो तो हजार सखियाँ राधा के पास थीं परन्तु अब तो केवल तीन चार सखी उपस्थित हैं ॥ १२४ ॥

राधा—(स्वगत) मैंने प्रातःकाल ही कुन्दलता के साथ सखियों को यज्ञ के लिये भेजा है । अब तक यज्ञ-समाधान हो गया होगा । अतः निश्चिन्त होकर यहाँ विलम्ब करने पर कोई हानि नहीं है ॥ १२५ ॥

मधुमङ्गल—सुबल ! निश्चय रूप से सखियों को समागत जानो वसन्तलक्ष्मी के बिना कोकिलरमणियों को सम्भावना नहीं है ॥ १२६ ॥

विशाखा—(ईषत् हास्य के साथ) उस से उन समस्त सखियों की चरणलक्ष्मी के द्वारा तुम्हारा घाट अशोकत्व लाभ कर उत्फुल्ल होगा । शास्त्रप्रसिद्धि (कवि-प्रसिद्धि) यह है कि सुलक्षणा युवतियों के चरणाघात से अशोक वृक्ष प्रफुल्लित होता है । अतः सखियाँ यहाँ आकर घाट में पदाघात करेंगी तब तो परमाश्रय निजोपजीव्य स्वरूप यह घाट जातभाग्य होकर सफल होगा ॥ १२७ ॥

कृष्ण—(बाँए ओर देख कर आनन्द के साथ) अहो कैसे

सुवर्णवर्णवाली सखियों के संचार के द्वारा यह ब्रह्मकुण्ड की अप्रवर्त्तिभूमि अलंकृता हो रही है ॥ १२८ ॥

ललिता—(ईषत् हँसती) पुराण में कहा गया है—
लुब्धव्यक्तिगण जगत् को धनमय, कामुकव्यक्तिगण कामिनीमय देखते हैं । उसी प्रकार परमार्थी जगत् में सर्वत्र नारायणमय देखते हैं । यह पौराणिक बचन आज प्रत्यक्षीकृत हुआ है ॥

मधुमङ्गल—भो प्रियवयस्य ! ललिता मिथ्या हास्य नहीं कर रही क्यों कि कमल-किञ्जल्क-पुञ्ज से पिञ्जरित हंसीगण के साथ तुम ने सख्यविधान किया है ॥ १२९ ॥

कृष्ण—(हास्य के साथ) अब भविष्यत् चिन्ता का प्रयोजन नहीं है । सम्प्रति घट्टशुल्क का पुण्याह में प्रवृत्त हो ।

राधा—(भ्रूविक्षेप पूर्वक) त्रिलोकी के बीच में ऐसा साहसिक शिखामणि कौन है कि गोकुलवालाओं के निकट दान ग्रहण करने के लिये मुख से उच्चारण कर सकता है । उस पर पुनः हम सब सूर्योपासिका के निकट ॥ १३१ ॥

श्रीकृष्ण—(ईषत् हास्य करके) हे लक्ष्मीमुखि ! दाक्षिण्य-वश शिक्षा प्रदान कर रहा हूँ ॥ १३२ ॥

अन्त्य रूप से उद्यान चक्र-वर्त्ति के उदय होने पर अब मृगाक्षियों द्वारा इस प्रकार वाक्य प्रावलय अत्यन्त अयोग्य है ॥ १३३ ॥

राधा—सखि ललिते ! धृष्टघट्टपाल के चालन से पतित हो गई हैं, अतः यहाँ कुण्ठित होना उपयुक्त नहीं है ॥ १३४ ॥

कृष्ण—सुबल ! यौवन गर्व से गर्जित इनके कठोर बचनों के स्फुर्जन को सुना है । (ऐसा कह कर अर्द्धनिःसृत जिह्वा दंशन के साथ) अहे ! कष्ट है, कष्ट है, इस राधा का अर्वाचीन यौवन गर्व अत्यन्त क्रीड़ा कर रहा है । जो भी हो, मैं महा-घट्ट साम्राज्यपट्ट में अभिषिक्त होकर चत्वरिकों के बीच घट्टपाल

चक्रवर्ती हुआ हूँ ॥ १३५ ॥

ललिता—(संस्कृतभाषा में) क्षुद्रवंश में जात जिस की छिद्रवाली वंशी है, कठोर स्वरूपा जिसकी यष्टि है, एवं वक्र-स्वरूप की मलिन शृङ्गिका है, ये सब सर्व प्रकार से उत्तम रूप में जिस के अङ्ग का आलिङ्गन कर रही है उस का इस दुर्गम बन के बीच घट्टपालवृत्ति के अवलम्बन में क्यों विचित्रता है ?

सुबल—अहे दुम्मुख मुखराएँ ! तुम सब के द्वारा इन महादान के अधीश की अवज्ञा करना उचित नहीं है ॥

श्रीराधा—महादान के अधीश होंवे, उस से हमें क्या, पक्षान्तर में सर्प हों, उस से हमारा क्या (ऐसा कह कर संस्कृत में) ॥ १३७ ॥

हे कृष्ण-भुजङ्ग ! कुलस्त्रियों के धर्षण से राजा कभी क्षमा नहीं करता है । क्यों कि उन के दंशन करने पर वे प्रतिदंशन कर सकती हैं अर्थात् उन को दातों से दंशन करने पर लोकनिन्दा व राजदण्डादि अमङ्गल से निष्कृतिलाभ नहीं है । सर्पपक्ष में-महारूप भी नकुलस्त्रियों के धर्षण में समर्थ नहीं हो सकता क्यों कि उस के दंशन से वे प्रतिदंशन कर सकती हैं ॥ १३८ ॥

कृष्ण—हे कुटिलापाङ्ग ! हृदयङ्गम बचन कह रही हो । इस लिये श्रवण करो (हर्ष के साथ) हे राधे ! तुम मङ्गलमय मूर्त्ति धारण कर रही हो, तुम्हारा ललाट अर्द्धचन्द्र-शोभा को धारण कर रहा है, अपूर्व कान्ति के द्वारा तुम्हारा शरीर विभूषित है, मुझ कृष्ण-मार्ग में तुम्हारी दृष्टि विलास कर रही है । तुम विशाखा नाम्नी सखी के साथ युक्त हो, नेत्राञ्जल की कान्ति के द्वारा तुम कन्दर्प की विदग्धता विधान कर रही हो, अतः भोगि राज मुझे अपने वक्षः स्थल में स्थान प्रदान करो ॥

पक्षान्तर में अर्थ-हे राधे ! तुम शिवमूर्त्ति को धारण कर रही

हो, अर्द्धचन्द्र से तुम्हारा ललाट विराजमान है, तुम अपने शरीर में नवीन कान्तियों की विभूति को धारण कर रही हो, तुम्हारे नेत्र अग्नि रूप हो रहे हैं, तुम विशाखा अर्थात् कार्त्तिकेय के साथ युक्त हो, और नेत्र के द्वारा कन्दर्प को दग्ध किया है । अतः भोगीन्द्र अर्थात् सर्प समान मुझे अपने वक्षःस्थल में अङ्गीकार करो ॥ १३९ ॥

ललिता—कृष्ण ! तुम्हारे सहचर गण भली भाँति जानते हैं कि यह ललिता धूर्त्तहरिणी तुम्हारी कूटवागुरा अर्थात् मृग-बन्धनी के द्वारा पराजित नहीं हो सकती । अतः विफल धृष्टता का परित्याग करो । राधा-प्राप्ति में ललिता प्रतिबन्धिनी ऐसा तात्पर्य है ॥ १४० ॥

कृष्ण—(सुबल के प्रति दृष्टिपात करने लगे)

सुबल-ललिते ! इन सब बातों को क्यों नहीं जानती हैं कि-चम्पक-पुष्पापहरण में गृह समीपस्थ उद्यान-स्वामी के द्वारा मणिभूषण लुण्ठित होने पर महाप्रभाववाली सूर्योपासिका किस रमणी के दन्ताग्र में तृणगुच्छ रूप मरकतमणि की आश्चर्य्य शोभा प्रकाशित नहीं हुई थी ॥ १४१ ॥

कृष्ण—सखे ! तुम उस कुतूहल को भूल गये थे, अतः इस अवसर में पुनः सुन्दर रूप से स्मरण करा रहा हूँ (ऐसा कह कर ईषत् हास्य करके) हाय ! इस पर्वत में मैंने हारादि वित्त का हरण कर कई बार इन रमणियों को जैनदीक्षा ग्रहण करायी । वसनरहिता वे सब विनय वाक्य के साथ नतवदन से दीनता प्राप्त होने पर दूरवर्त्तिनी लतारूप सखियाँ पत्र दान के द्वारा अनुग्रह करने लगी थीं ॥ १४२ ॥

विशाखा—अब इस प्रकार दर्परूप डिग्गिडम रत्न का प्रयोजन नहीं है ।

ललिता--सखि विशाखे ! दुःख की बात है । प्रभात काल में विदालित अनर्घ मणिकांचन-राशियों की किरणों से सम्यक्पूजित श्रीराधा की कंचुलिका का लुण्ठन वृत्तान्त सखीगण के द्वारा सास (जाटिला) के निकट कहने में प्रवृत्त होने पर, कि स महा-प्रचण्ड दर्पमत्ता की कण्ठकावलीने मुख में तर्जनी अग्र निक्षेप पूर्वक हा हा रव उच्चारण के साथ चाटुपूर्ण कारुण्य के द्वारा किस व्यक्ति को आर्द्राभूत नहीं किया है ? ॥ १४३ ॥

सुबल--यहाँ वह कण्ठकवन रूपिणी जाटिला दुल्लभा है अतः तुम सब के छीपने में कोई कारण नहीं देख रहा हूँ ॥ १४४ ॥

चम्पकलता--ललिता का अनुभाव रूप वह भास्कर जययुक्त हो रहा है, जो तस्कर विक्रम को कुण्ठित कर रहा है ॥ १४५ ॥

वृन्दा--(श्रीकृष्ण को देख कर) हे युवराज ! ललिता अत्यन्त उग्रवर्त्मवाली है । अतः यहाँ पर एक सखिद्र कौड़ी भी नहीं मिल सकेगी ॥ १४६ ॥

कृष्ण--(ईर्ष्या के साथ) वृन्दे ! तुम विपद्गता प्राप्त कर गोपिपक्ष की अञ्चल-संचारिणी हो रही हो, यह उपयुक्त है, चञ्चल गोपरामारूप आम्रलता से शुल्क स्वरूप में विकाशोन्मुख कालिका ग्रहण विषय में आज मेरी पुंस्कोकिलकोल की विदग्धता को देखो ॥ १४७ ॥

राधा--सखि वृन्दे ! तुम अपने परस्व ग्रहणाभिनिवेशी कोकिल को निषेध करो । अब तो आम्रलताएँ दुम्मुख भ्रमर के द्वारा पालित हो रही हैं, उन के हस्तरूप पल्लव के द्वारा पराभव प्राप्त कर यह कोकिल जैसी तुम्हारी सखीरूपा नवमालिका तथा मल्लीपुष्पों को न हँसावे ॥

कृष्ण--(कौतुक के साथ हँस कर) हे सुवर्णगौराङ्ग ! घाटी-शुल्क प्रदान के निमित्त अथवा पर्वतकन्दरा में आतिथ्य ग्रहण

के लिये तुम्हारी जो अभिरूची है, उसे गोचर कराओ ॥
राधा--(ईर्ष्या के साथ अबज्ञा-अभिनय कर तूष्णी हो जाती है)

कृष्ण--राधे ! तुम प्रचुर रूप-लीला के द्वारा समस्त पद्माक्षी रमणियों में श्रेष्ठा हो, कपट उद्घाटन निबन्धन से तुम्हारी अदक्षिणता व्यक्त हो रही है । अतः क्यों निरुत्तरा नहीं होगी ? ॥ १५० ॥

नान्दीमुखी--(धीरे धीरे से निकट में जाकर) हे नागरेन्द्र ! मैं आदेश कर रही हूँ ॥

कृष्ण--नान्दीमुखि ! शीघ्र कहो आप क्या आज्ञा करती हैं ?
नान्दीमुखी--यह कर रही हूँ--श्रीराधादिक हम सब की बालिकाएँ हैं वे सब हैयङ्गवीन लेकर यज्ञ में जावेंगी । अतः अब तुम उन के शुभान्वित होकर अनुकूल करना ॥

कृष्ण--(हर्षाभिनय पूर्वक) यह आज्ञारूप महाप्रसाद मस्तक पर धारण कर रहा हूँ (अनन्तर पास में देख कर) सखे ! मधुमङ्गल ! इस गोकुल में सूर्योपासिका किशोरियों का हैयङ्गवीन अत्यन्त मधुर है, यह अत्यन्त प्रसिद्धि है । अतः प्रतिटंक का समुचित शुल्क तिन स्वर्णटंक होते हैं । उस प्रकार से ग्रहण न कर लघुटंक गणना से अर्थात् चार गुंजा माप से टंक गणना कर शुल्क धन ग्रहण करो, क्योंकि इन के प्रति भगवती नान्दीमुखी का पक्षपातित्व है ॥ १५२ ॥

मधुमङ्गल--प्रियवयस्य ! चार माशा में एक टंक, चार टंक में कर्ष, चार कर्ष में पल, सौ पल में तुला, तथा बीस तुला में एक भार होता है, गणनाविद् पण्डित इस प्रकार माप निरूपण करते हैं । राधिकादि गोपरमणियों के इस परिमाण से महाभार है क्योंकि पहले भार को उतारने के समय ललिता ने अपने

मुख से कहा है कि-सखि ! तुम भार वहन से क्लिष्टा हो रही हो ॥ १५३ ॥

कृष्ण—(हँस कर) उस के बाद उस के बाद ।

मधुमङ्गल—पचास भार से एक महाभार होता है, पांच गोपि के हैयङ्गवीन अस्सीलक्ष टंक हैं, इस पर घट्टपाल की जीविका के लिये मैंने चारिलक्ष टंक बढ़ाये हैं । जिससे मिल कर चौरासीलक्ष टंक हुए ॥ १५४ ॥

कृष्ण—सखे ! तुम रस-लोभी हो, “शुल्क बढ़ाया है” यह मिथ्यावचन कह रहे हो, तुम्हारी गणना में हेमटंक चौरासीलक्ष मात्र हुए, तब तो निश्चय जाना जाता है तुम उत्कोच-प्रलोभन से इस प्रकार संक्षेप गणना कर रहे हो ॥ १५५ ॥

मधुमङ्गल—(श्रीकृष्ण के कर्ण में मुख विन्यास पूर्वक कथन-मुद्रा का अभिनय कर कुछ अनकहन की भाँति वदन विश्लेष कर)

कृष्ण—(ईषत् हास्य के साथ) तुम्हारा आचरण भली भाँति ज्ञात हुआ, ज्ञात हुआ । अतः गणितटंक का जिस से शीघ्र ही घट्टचत्वर में उपस्थित करें उस की चेष्टा करो ॥ १५७ ॥

चित्रा—अहे दानीन्द्र ! यदि पांच गागरी का मूल्य चौरासीलक्ष टंक है तो नहीं जान सका कि वस्तु का मूल्य क्या होगा ? ॥ १५८ ॥

कृष्ण—चित्रे ! ऐसा मत कहो, यदि वस्तु अमूल्य नहीं होती तो दीर्घदर्श याज्ञिक इस को मूल्य रूप में अमूल्य मणिभूषण को क्यों प्रदान करते ॥ १५९ ॥

नान्दीमुखी—हे पद्मनेत्र ! इन समस्त गोपरमणियों का चौरासीलक्ष टंक दान दुष्कर नहीं है परन्तु उस का समाधान किस प्रकार होगा चिन्तन करो ॥ १६० ॥

मधुमङ्गल—प्रियवयस्य ! नान्दीमुखी ने संक्षेप में कहा है,

ये सब एक एक चौरासीलक्ष जीवजात रूप से श्रेष्ठ हैं अर्थात् चौरासीलक्ष परिमाणक परमद्युतिमय जो जातरूप सुवर्ण हैं उन से श्रेष्ठ हैं । पक्षार्थ में-चौरासीलक्ष जो जीव जाति हैं उन सब के सौन्दर्य से वरिष्ठ सौन्दर्य वाली हैं ॥ १६१ ॥
(इस प्रकार अर्द्ध उच्चारण पूर्वक ईषत् हास्य कर मुख फिराने लगा)

कृष्ण—सखे ! सुनी है तो, नान्दीमुखी की शिक्षाचातुरी, वह ऐसा है कि-इन में से किसी एक को ग्रहण करो ॥ १६२ ॥

ललिता—(उच्च हास्य करके) यह तो केवल अदक्ष लोलुप युवक शुक-पक्षि के द्राक्षा भक्षण की भाँति मनोरथ मात्र है ॥ १६३ ॥

कृष्ण—शोभा के द्वारा ये समस्त रमणियाँ अत्यन्त तारतम्य-वती नहीं हैं तो भी इन में से जीवनौषधि रूपिणी पद्माक्षी ललिता के प्रति मेरी अभिरुचि है ॥

वृन्दा—निकुञ्जयुवराज ! श्रीराधा ने मणिभूषणों का गोपन किया है । अतः यह भूरिभूषण भूषिता ललिता ही शुल्क-कार्य के लिये पर्याप्त है ॥ १६४ ॥

कृष्ण—हे मुग्धे ! देखो, यह राधा पक्कदाडिम बीज के समान माणिक्य दशन वाली है, अधरोष्ठ पद्मरागमणि के समान है, वदन में मुक्ताफल की भाँति मधुर हास्य विराजमान है, मुखविम्ब चन्द्रकान्तमणि की भाँति है, केशकेलाप इन्द्रमणि के समान दीप्तिशाली है, यह तो समस्त तरुणीरत्न में श्रेष्ठा है, इस राधा का परित्याग करना उचित नहीं है । (ऐसा कह कर राधा की ओर जाने लगे)

राधा—(लीला वश अत्यन्त भय अभिनय करके) सखि विशाखे ! परित्राण करो, परित्राण करो । (ऐसा कह कर

अभङ्ग के साथ पलायन करने लगी) ॥ १६५ ॥

विशाखा—भो दुर्वार हस्ति ! दुरतिक्रमणा ललिता की विशाल गजबन्धनी के अतिक्रम होने पर चम्पकलतादि वेष्टित अमृत सरसी का अवगाहन तुम्हारे लिये सुलभ होगा ॥ १६६ ॥

ललिता—हे बिन्ध्याचलचारि मत्त करीन्द्र ! इस भूमि का अतिक्रमण सङ्गत नहीं है । तात्पर्य—बिन्ध्याचल ने जिस प्रकार मर्यादा त्याग कर सूर्य का निरोध किया उसी प्रकार तुम राधा का निरोध करो ॥ १६७ ॥

वृन्दा—(व्यवधान से) सखि ललिते ! चाटुवाक्यों से प्रार्थना करती हूँ, तुम ईषत् तूष्णीभाव का अवलम्बन करो । मैं दोनों के ईर्ष्या, गर्व एवं हर्षादि निबन्धन भाव परम्परा चेष्टा का सन्दर्शन करूँ ॥ १६८ ॥

कृष्ण—गृहनिर्दिनि ! अर्थात् घर के बीच में आत्मश्लाघा-कारिणि ! शुल्क न देकर क्यों पलायन करती हो, पद से पदान्तर गति तुम्हारे लिये दुर्लभा है । अर्थात् एक पाँव आगे बढ़ाना असम्भव है ॥ १६९ ॥

राधा—हम सब क्या वाणिज्य के द्वारा जीवन निर्वाह करती हैं कि धट्टपाल तुम्हारे भय से पलायन करेंगी । अर्थात् वाणिक् लोग डरपाक होते हैं । हम सब वाणिज्य-व्यवसायी नहीं हैं, हमें किस से भय है ॥ १७० ॥

कृष्ण—उत्तम उत्तम, क्षणकाल स्थिर हो, जब तक मैं तुम्हारे स्तनोपरि विलक्षण मुक्ताहार अपहरण के लिये सामर्थ्य प्रकाश न करूँ ॥

राधा—यह तो अतिदीर्घतम कृष्णपक्ष की रजनी है, अतः किस प्रकार कल्य की अर्थात् प्रातःकाल की आगमन-शङ्का हो सकती ? परम कोपवती मल्लक्षणा श्यामा नायिका को समर्थवान

भी प्राप्त नहीं हो सकता है ।

कृष्ण—(ईषत् हँस करके) कमलसमूह रूप लोचनचय उन्मीलन करके तीक्ष्णरश्मि सूर्य के उदय होने पर तामसी-रात्रि का तारारूप विशाल हार अपहृत होता है तथा अन्धकारमय वसन स्खलित हो जाता है । इसी लिये वह तामसी श्यामा स्वयं पलायन करती है, पक्षान्तर में अर्थ-शोभमान् आजानुलम्बि बाहुवाला पुण्डरीक नयन मेरे आगे स्फूर्ति होने पर श्यामा स्त्री का मुक्ताहार अपहृत तथा नीलवसन स्खलित हो जाता है वह सर्वदा स्वयं पयालान करती है ॥ १७३ ॥

राधा—हाय ! हे सूर ! राहु के उदय होने पर कभी चण्डकार सूर्य की चण्डिमा अर्थात् तेजः नहीं रहता ॥ १७४ ॥

कृष्ण—देखो, असंख्य चक्रचिन्ह-धारी यह मेरा दक्षिण हस्त है, इस के समक्ष राहु का उत्थान किस प्रकार हो सकता ? वह चक्रदर्शन से भह भीत हो जाता है ॥ १७५ ॥

राधा—(उच्च हास्य करके) हे अयुत चक्रचिन्ह धारी नागरनाग ! अर्थात्-हे नगर सम्बन्धी अयुत चक्रचिन्हधारी सर्प ! तुम्हारे पुष्काररूप दुर्विष से मैं हत हो गई हूँ, अब मोह दायि विषाण रूप महावृष्टि से क्यों उल्लसित करना चाहते हो । गिरिगह्वर में जाकर मुरली नागिन का चुम्बन करो ॥ १७६ ॥

कृष्ण—हे शुल्कनागरि ! यथार्थ कहती हो, क्यों कि यह मल्लक्षणजन पद्मिनीगण के स्वर्णकंकण आकर्षणार्थ महासार विषाण वादित कर रहा है । नाग शब्द का हस्ति अर्थ ग्रहण कर के हे शुल्कनागरि ! यह नागरनाग सुप्रतीक अर्थात् दिग्गज स्वरूप है । जो कमलिनी समूह के करहाट (मूल) आकर्षण के लिये महासार दन्त उल्लासित कर रहा है ॥ १७७ ॥

राधा—(पद्मपक्ष अवलम्बन कर के कहने लगी) अहे

हस्तिन् ! पद्मिनीसमूह बराटक अर्थात् वीजकोष का प्रदान नहीं करेगा । पक्षान्तर में-पद्मिनी नायिका एक बराटक अर्थात् एक कपर्दक प्रदान नहीं करेगी जानना ॥ १७८ ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके) हे कामिनि ! तुम बराटक के लिये आत्मदान करने में क्यों उद्यत हो रही हो ? यह तो अर्थ-प्राप्ति चक्रवर्ती है, अङ्गनाओं से प्रसन्न नहीं होता है ॥ १७९ ॥

राधा—(प्रियवचन के साथ हँस कर) हाय ! हे कूटघट्ट-मण्डलेन्द्र ! प्रसन्न हो प्रसन्न हो, शुल्क के लिये स्वयं कारुण्य प्रकाश कर इस व्यक्ति का ग्रहण करो ॥ १८० ॥

कृष्ण—(स्फुट रूप से हँस कर) हे कोपने ! तुम स्वार्थ-विषय में परिणता हो, क्यों कि तुम्हारा काकु भङ्गीमय उपहास-मुद्रा के द्वारा वास्तवार्थ में पर्यवसित हो रहा है । अतः यथार्थ तथ्य श्रवण करो ॥ १८१ ॥

हे विधुराङ्गि ! गव्यभार भर से भग्नस्कन्धवाली तुम्हारी भाँति रमणी को यह मद्धिजन हाथ के द्वारा स्पर्श करना दूर रहा, चरण द्वारा स्पर्श करने में लज्जित हो रहा है । अतः उपहास छल से दैन्य गत करना ॥ १८२ ॥

राधा—(ईषत् हास्य करके) इस के महाविडम्बन करने पर भी यह मनोहर सत्कार बुद्धि के द्वारा दर्प विनाश का व्यक्त कर रहा है ॥ १८३ ॥

हे सर्वतोभद्र ! तुम शृङ्गारोपितदामा अर्थात् वेश के लिये माला आरोपण कर विलक्षण हो रहे हो । क्यों कि जम्बुलगुड़ में प्रसन्नता के कारण तुम को प्रफुल्ल देख रही हूँ ! तात्पर्य-भद्र शब्द का अर्थ वलीवर्द अर्थात् दो पीठ वाला वलद है, भूषा के लिये रज्जुनिबन्धन, और जम्बुलगुड़ (अक्षर विश्लेष धर के) सदा हुआ गुड़ से हम सब ने आदर दिया है इस से अत्यन्त प्रफुल्ल

हो रहे हो ॥

पक्षान्तर में अर्थ-हे सर्व प्रकार से मङ्गलस्वरूप ! तुम मस्तक में शृङ्गारोचित माला धारण कर अतिशय सुशोभित हो रहे हो, गोपालन के लिये जामकाठ का लगुड़ धारण कर आदर ज्ञान से प्रफुल्ल हो रहे हो ॥

सत्र—(उच्च हास्य करने लगे)

कृष्ण—अब वाप्रवितण्डा आवश्यक नहीं है । दोनों हाथ हीरकहार का हरण करें ॥ १८४ ॥

राधा—हीरकग्रहण में करपल्लव का साहस कहाँ से हो सकता । मुख से गर्व का प्रयोजन नहीं है । तुम सब के देखते हुए यह मैं चलती हूँ ॥ १८५ ॥

कृष्ण—तुम सुदीर्घ केशपक्ष-वाली हो, अतः स्पष्टतया उड़कर जाओगी ॥ १८६ ॥

राधा—हे अभिसारिका-सहस्रसेवारत ! मैं सारिका नहीं हूँ कि उड़कर जाऊँगी ॥ १८७ ॥

कृष्ण—चञ्चल पाशक दोनों के दाय भजन के कारण शारि-पट्ट उपलक्ष में तुम मेरे समक्ष धृता हुई हो अतः शृङ्खल के द्वारा सारी तुम की बाधूँगा ॥

अथवा—चपलनेत्र हमारे आगे शुल्क रूप दायभजन के हेतु चौरासीलक्ष स्वर्णटंक उपलक्ष में धृत हो रही हो । अतः बाहु रूप पाश के द्वारा बन्धन करूँगा (ऐसा कह कर हस्तधारण करने को इच्छुक हुए) ॥ १८८ ॥

राधा—हा धिक्कार ! हा धिक्कार ! निश्चय यह महामन्मथ-सेवा का प्रभाव है । क्यों कि पतिव्रता स्पर्शपाप से तुम्हारा भय नहीं है ॥ १८९ ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके) हे भाविनि ! सत्य ही है,

तुम उत्कट कोपशालि पति के प्रति बद्धव्रता हो रही हो, अतः तुम्हारी प्रचुर सेवा में अभिलाषुक हो रहा हूँ ॥ १६० ॥

राधा—(प्रणय कोप के साथ) हे वक्रवितण्डा में परिणत ! क्षान्त हो, यह निश्चय जाना कि कुलाङ्गना स्पर्श अत्यन्त अहित-प्रद है ॥

कृष्ण—हे कुलीन-मानिनि ! क्या मैं अकुलीन हूँ कि मेरे लिये तन स्पर्श करना अनुचित है ।

राधा—कुलीनजनों का इस प्रकार आचरण उपयुक्त है क्या, कि निर्जनवन में परवनिताओं का निरोध के द्वारा इस प्रकार विडम्बन करना ॥

कृष्ण—(परशब्द का श्रेष्ठार्थ मान कर कहने लगे) हे कामिनि ! तुम अपने को श्रेष्ठ बनिता करके मानती हो, अतः इस वन में आज घट्टदान प्रदान करो ॥

राधा—हे मोहन ! तुम जैसे जन जिस प्रकार तर्क कर रहा है यह जन उस प्रकार का नहीं है । अतः यहाँ घूर्णायमान भ्रूजङ्गयुगल नर्तन के द्वारा व्यालप्राहि क्रीडाडम्बरों से प्रयोजन नहीं । यहाँ शुल्कभिज्ञा दुर्लभ है ॥ १६१ ॥

कृष्ण—अयि दानशीले ! सम्प्रति तुम्हारा उत्कृष्ट शुल्कदान में उद्यम को देख कर तुम्हारी परमोत्सवमयी चटुला भ्रूनर्तकी नृत्य कर रही है ॥ १६२ ॥

राधा—(संस्कृत में) यह मत्सदृश कान्ता रूप लोहमयी अर्थात् कनक प्रतिमा स्फूर्ति पा रही है । यह अपनी काठनता प्रयुक्त के कारण अलघु, कृष्णवर्त्म का अर्थात् प्रज्वलित अग्नि का स्तम्भन करती है, अतः इस में भूरि फणवाला कुहक नाम नाग के दन्ताघात अपनी-क्रिया में असमर्थ होता है । अथवा यह मल्लक्षण कान्ता कनक प्रतिमा रूप से स्फूर्ति पा रही है, जो

कि कृष्ण तुम्हारी प्राप्ति के उपाय में अति विरोधिनी है । क्यों कि मुझ में मायावि-जन का भोगाभिलाष किसी प्रकार में सिद्ध नहीं हो सकता ॥ 'तात्पर्य-लोहमयी' शब्द के अक्षर विश्लेष करने पर ला-तथा ऊहमयी टहरता है । ला शब्द का अर्थ दान, ऊहमयी शब्द का अर्थ वितर्कमयी, प्रतिकृति शब्द से प्रतिमा, अलघु शब्द से अतिशय, कृष्णवर्त्म शब्द से कृष्ण के आश्रयणीय उपाय, कुहक शब्द से कपटी एवं भोग शब्द से बाञ्छा है । अर्थ है कि - दानविषय में वितर्कमयी यह प्रतिमा कृष्ण तुम्हारी प्राप्ति उपाय में प्रतिबन्ध स्वरूपा है । जिस में मायावी का अति भोगाभिलाष विफल हो जाता है ॥ १६३ ॥

कृष्ण—(लोहनिर्मित प्रतिमा अर्थ का अवलम्बन करके) हे राधे ! तुम अद्भुत बहु लोहमयी प्रतिमा ध्रुव सत्य हो । तब तो तुम स्वयंप्रहा हो अर्थात् अपने से ग्रहण करने वाली हो, अत एव चुम्बकमणि रूप मुझ को आलिङ्गित करो । (ऐसा कह कर मन्द मन्द गमन करने लगे) ।

तात्पर्य—“प्रतिमास्यद्भुता” पद के सन्धिविच्छेद करने पर प्रतिमास अद्भुता “बहुलोहमयी” पद के सन्धिविच्छेद में “बहुला ऊहमयी और चुम्बक शब्द चुम्बककर्ता है । अर्थ—हे राधे ! तुम प्रतिमास में अद्भुता अर्थात् नित्यनवीना हो । तुम्हारे रूप दर्शन से नाना प्रकार का तर्क उपस्थित होता है । अत एव चुम्बनकर्ता मुझ में आलिङ्गन प्रदान करो ॥

राधा—(ईषत् प्रत्यावर्त्तन करके) दूर हो, दूर हो । (आर्त्त-स्वर से) मुझे मत पकड़ो ।

कृष्ण—तुम युवतियों की शिरोमणि स्वरूपा हो, चौरासी-लक्ष शुल्क के विनिमय के द्वारा तुम को प्राप्त किया है । अतः क्यों नहीं धरूँगा । (ऐसा कह कर पकड़ने की इच्छा से पाद-

निक्षेप करने लगे)

राधा—(भय जात त्वरा का अभिनय कर बाँई ओर गमन करने लगी) ॥ १६४ ॥

ललिते ! तुम क्या कौतुक देख रही हो ? ॥

नान्दीमुखी—सखि राधे ! अब कुट्टमित-भाव प्रकटन की आवश्यकता नहीं है । क्यों पलायन कर रही हो ? ॥

ललिता—(आगे प्रदक्षिण करके) ॥ १६५ ॥

यद्यपि दुःशील स्वभाव वाले लुंठक तुम सब के दानगणना प्रलाप को कानों में नहीं सुन रही हूँ तो भी कुछ बोलना चाहती हूँ ॥

कृष्ण—कठिने ! जो इच्छा हो कहो ॥ १६६ ॥

ललिता—(संस्कृत में) अहे तुम्हारे वयस्य मधुमङ्गल ने अभी कहा था कि-ये सब ब्रजहरिणनयना प्रत्येक चौरासीलक्ष मूल्यवती हैं परन्तु इन में से प्रियसखी महार्घा है अर्थात् मूल्य की संख्या नहीं है । यह बात जगविख्यात है । अतएव हे शठ ! किस प्रकार राधा को ग्रहण करने का साहस कर रहे हो ? ॥ १६७ ॥

कृष्ण—(स्वगत) जो भी हो इसने मुझ को निरुत्तर कर दिया है । (ऐसा कह कर उत्कर्ण मना होकर) सुबल ! यह गभीर-धर्म-वाली, वागाडम्बर कारिणी रमणी कौन है ? जो कि दूर में अस्पष्ट रूप से विचरण कर रही है । (ऐसा कह कर सुबल के कर्णसंलग्न से) यदि इन महासैन्यों के साथ सम्मर्द अर्थात् युद्ध होता है तो राजसमीप में जाकर समस्त निवेदन कर मेरे लिये शासनपत्रिका लाओ ॥ १६८ ॥

सुबल—मैं इस कोलाहल का उत्पत्तिस्थान जानने के लिये चलता हूँ ॥ (ऐसा कह कर चलने लगा) ॥ १६९ ॥

कृष्ण—हे कठोरभाषिणि ललिते ! तुम्हारी सखी चौरासी-

लक्षाधिक हो सकती है परन्तु कोटिसंख्या अतिक्रमण नहीं कर पावेगी । उस के बाद यह नागरचन्द्र षोलहलक्ष के द्वारा अवश्य शुल्कान्तःपाति में तुम को निक्षेप करेगा ॥ पक्षान्तर में यह नागरचन्द्र तुम को अपनी षोलह कला की अन्तःपातिनी करके आत्मसात करेगा ॥ २०० ॥

राधा—नान्दीमुखी ! आपका निदेश सुन्दर रूप में सम्पन्न हो रहा है । क्यों कि घट्टदान कीटिगुण रूप हो रहा है । २०१ ॥

नान्दीमुखी—सखि राधे ! क्यों पालन-सम्पन्न न होगा, क्यों कि शुल्क का तृतीयांश ग्रहण किया गया है ॥ २०२ ॥

सुबल—(वयस्य के साथ प्रवेश कर के) प्रियवयस्य की निज सेना उद्यान चक्रवर्ती सिंहगण के निर्घोष के द्वारा दिङ्मण्डल बधिर करके जय प्राप्त हो रहे हैं ॥

कृष्ण—प्रियवयस्य उज्ज्वल ! निश्चय तुम चक्रवर्तिसमूह के पत्रवाहक हो ॥ २०३ ॥

उज्ज्वल—ऐसा ही है, महाराज की महाघट्टाधिकार विषय में यह लिपि है । (ऐसा कह कर श्रीकृष्ण के हाथ में केतकीपुष्प के द्वारा मुद्रित पत्र प्रदान करने लगा)

कृष्ण—(छल के साथ निःशब्द से लिपिवाचन मुद्रा का अभिनय करके)

वृन्दा—नागरेन्द्र ! हम सब पत्रश्रवण करने की इच्छुक हैं । अतएव मुखबन्द का परित्याग कर केवल कार्य का उच्चारण करो ॥

कृष्ण—(स्पष्ट करके पाठ करने लगे)—॥२०४॥
प्रचुरगर्ववाली ये सब रमणियाँ सूर्यदेव की परिचर्या में पाण्डित्य लाभ कर शठ—बुद्धि से घट्ट व्याघात कर गुप्तरूप से भ्रमण कर रही हैं । अतएव अप्रमत्ता आप सब पटुता पूर्वक

अत्यन्त यत्न के साथ इन के दीर्घ दर्शनछल से सौगुणा शुल्क विधान करें ॥ २०५ ॥

नान्दीमुखी— दानीन्द्र ! ये सब रमणियाँ स्वभाव से विशुद्ध हैं परन्तु क्यों कपटलेश शिक्षा में अभिलाष रखती हैं ? ॥ २०६ ॥

कृष्ण—तौ भी उन दुर्गम कान्ताराधिराज का शासन अदृश्य अनुष्ठान योग्य है । (ऐसा कह कर स्थानान्तर गमन करके) अहो ! आश्चर्य्य ! शैशवावस्था की सम्यक् रूप से निवृत्ति नहीं हुई तो भी इन का वक्षःस्थल उच्च दिखाई दे रहा है । (पुनः देख कर) उत्तम बस्त्र के द्वारा यद्यपि वक्षःस्थल ढका हुआ है तो भी भातर से कांचनमय किरणसमूह निर्गत हो रहा है ॥ २०७ ॥

राधा—(असूया के साथ वक्रभाव से नेत्रान्तपात करने लगी)

कृष्ण—(कौतुक के साथ आत्मगत) अहो ! आज गान्धर्व्विका वस्त्रोत्थलन लीला के द्वारा पुलकवृन्द को और अधर चातुरी परिचय के द्वारा मन्दहास्य को संरोधित कर रही है वह मिथ्या कोप से दृग्बल घूर्णन के द्वारा रुष्टा की भाँति मुझ को प्रत्याख्यान करती है ॥ २०८ ॥

(प्रकाश्य पूर्वक) उत्तम, हे महोद्यानचक्रवर्तिन् ! उत्तम, उत्तम । सब के ऊपर ईश्वर की बुद्धियाँ विचरण करती हैं यह लोकप्रसिद्धि सत्य ही है । (वाई ओर दृष्टिपात करके) नान्दीमुखी ! देखो देखो, ये पांच जन गोपरामा प्रत्येक अपने वक्षःस्थल में कनक कलश गोपन कर घट्टाधिकारियों को प्रतारित कर रही हैं ॥ २०९ ॥

सब—(क्रोध भरे भ्रूधनु कुटिल करके आक्रोश के साथ) हे रमणीतस्कर ! अपने स्थान पर चले जाओ ॥ २१० ॥

कृष्ण—(अपवारण करके) वृन्दे ! कुञ्चितभ्रू बाली पंच-

मुखी का अवलोकन करो । (ऐसा कह कर गद्गद वाक्य से) काम पञ्चानन पांच वदन से किसी तीव्र व्यथा को प्राप्त कर निश्चय सौम्यमूर्ति का भजन कर गुरुतर विद्यालाभ के द्वारा कृती हो रहा है । अत एव इन पांच जन के भ्रूधनु समूह में पांचबाण सन्धान पूर्वक पंचमुख अर्थात् सिंह-विक्रम शाली मुझ को वध करने में उद्यत हो रहा है । (ऐसा कह कर घूर्णयमान होने लगे)—॥ २११ ॥

मधुमङ्गल—(व्यवधान से) हाय ! अपनी विह्वल प्राप्त आत्मा का रोध क्यों नहीं करते हो क्यों कि हम सब इन कुटिलदृष्टि वाली किशोरियों के द्वारा कटाक्षित हो रहे हैं ॥ २१२ ॥

कृष्ण—(भाव गोपन करके) सखे मधुमङ्गल ! उन कुटिल-भ्रू बालियों के विचित्र कौटुल्य के द्वारा विस्मित हो रहा हूँ । जो भी हो उस से क्या हो सकता है । इन्होंने छल करके स्वर्णमय दश कलश को गोपन करके रखा है । अतः दश कुम्भ के शुल्क को दुगुना करने पर बीसलक्ष अधिक तीन कोटि होता है । पुनः पांच कलश के अस्सीलक्ष शुल्क मिलाने पर चार कोटि होता है, और सौगुण करने पर चार वृन्द होगा ।

मधुमङ्गल—सुनो, राजकुल के तो हुए चार वृन्द, सर्वविद्या के गुरु तुम्हारे चौसठ कोटि, संख्या शास्त्रवेत्ता कायस्थ हमारे पचीस कोटि और दण्डधारि सुबलादि पशुपाल के ग्यारह कोटि हैं ।

कृष्ण—सब को मिला कर पांच वृन्द हुए ॥ २१३ ॥

राधा—(ईषत् हास्य करके) तुम सब के रखने को पात्र नहीं देख रही हूँ । माप करके इतना धन कहाँ रखोगे ? अतः पहले मधुमङ्गल के द्वारा ब्रज से शकटादि तथा उन के वाहक वृष, महिष, गर्दभ, ऊँटादि को ले आओ ॥ २१४ ॥

(४२)

कृष्ण—हे हरिणनयने ! परिहास की आवश्यकता नहीं है, प्रपुल्लचित्त से यहाँ स्वयं इस कर्म के द्वारा उल्लिखित धन राशि का अर्पण करो, पक्ष में—उदयशील । वरुयात इस निज देह का समर्पण करो ॥ २१५ ॥

नान्दीमुखी—(कृष्ण के निकट गमन कर असूया के साथ) मोहन ! हम सब की भगवती की स्नेह-पात्री सरलस्वभाववाली गोपरामाओं का किस लिये भूँठमूँठ दश कुम्भ के दान को बढ़ाया है ?

कृष्ण—नान्दीमुखी ! यह कभी अलीक नहीं है, यह वास्तविक सत्य है । ये पांच जन पंचदश कलस के विलास भाजन हैं ॥ २१६ ॥

नान्दीमुखी—नागरेन्द्र ! महाव्रतधारिणी सन्यासिनी के मत्सदृश परिजन यथार्थ न जान कर कभी विज्ञापन नहीं करती है । तो भी यदि मेरे बचन में सन्देह है तब मेरे साथ आकर प्रत्यक्ष में देखो (ऐसा कह कर कृष्ण के साथ राधा के समीप में गमन पूर्वक) हला राधे ! यह दुर्ललिते गाकुलेन्द्रनन्दन शपथ करने पर भी हमारे बचन में विश्वास नहीं कर रहे हैं । अतः प्रसन्न हो ईषत् वस्त्र उद्घाटन के द्वारा निज वक्षःप्रान्त दिखा कर इन हठशेखर के हस्त से सपरिवार आत्मा का मोचन करो ॥ २१६ ॥

सब—(असूया प्रकाश कर के) दुर्बुद्धिके ! दूर हो दूर हो, तुम ही अनर्थकारणी हो, अब हम सब ने जान लिया । यहाँ से दूरीभूत होकर किसी एकान्त स्थल में अपने वक्षः प्रान्त का अवलोकन कराओ ॥ २१८ ॥

नान्दीमुखी—(ईषत् हास्य करके) अहे महाहठकारिणियों हित बोलने पर कोप कर रही हो ।

कृष्ण—हमारा शुल्क खाण्डत नहीं होगा क्योंकि यहाँ हरि

(४३)

एक रति काञ्चन का परित्याग नहीं करेगा ॥ २१६ ॥

विशाखा—(मन मन में) पहले कृष्ण की दूती वृन्दा को शुल्कार्थ के निमित्त कृष्ण को अर्पण करके दीपशिखा के द्वारा अग्निपूजा का प्रारम्भ करूँ अर्थात् उन्हीं की वृन्दा को उन्हीं को देने पर हमारी कोई क्षति नहीं है ॥ २२० ॥

(प्रकाश कर के) नागरेन्द्र ! कहाँ यह पंचघट घृत है और कहाँ परिमाण में घटशुल्क का संघटन । जो भी हो उपकारी राजकुमार तुम्हारी अपेक्षा करके प्रत्युपकार विषय में हम सब निज प्रियसखी वृन्दा को समर्पित करती हैं ॥ २२१ ॥

सुबल—(संस्कृत में) पंचवृन्द शुल्क प्रदानस्थल में एक वृन्द का अर्पण किस प्रकार उपयुक्त हो सकता है । हम सब संख्याभिज्ञ कायस्थ हैं, गोपों को भाँत हमारा प्रतारण नहीं कर सकती । श्लेष में पृथ्वी में सम्यक् ख्यातिवाले संख्यावेत्ता कायस्थों का प्रतारण नहीं कर सकती हो ॥ २२२ ॥

ललिता—(क्रोध प्रकाश कर के) विशाखे ! तुम अत्यन्त मुग्धा हो, क्यों कि इस लघु अर्थ में अपनी गुरुतर सखी वृन्दा को अर्पण करने की इच्छा कर रही हो ॥ २२३ ॥

मधुमङ्गल—ललिते ! यह अलीक माहात्म्य को रहने दो ॥

ललिता—वटो ! सुनो, तैत्तिरीय कोटि देवता से शतकोटि अर्थात् वज्रहस्त इन्द्र प्रधान है । इस से दो परार्द्ध वैभव वाले भगवान् हिरण्यगर्भ प्रधान हैं । उन से समस्त सम्पत्ति की ईश्वरी लक्ष्मी प्रधाना हैं और उस से पुनः वृन्दा प्रधान है क्यों कि जिस की अपूर्व शोभा में भगवान् विष्णु मुग्ध होकर लक्ष्मी को तुच्छ ज्ञान कर कामना करते हैं । यह समस्त कथा हम ने भगवती पौर्णमासी के मुख से सुनी है ॥ २२४ ॥

विशाखा—(चरण में पड़ कर काकु विस्तार पूर्वक) सखि

ललिते ! उत्तम कहा है, परन्तु मैं तात्कालिक दुःसह दुःख के परिहार के लिये इस प्रकार अयुक्त कर्म करने की इच्छा कर रही हूँ। अतः प्रसन्न हों, वृन्दासमर्पण को अनुमोदन करो, हम सब यज्ञीयघृत आघ्राण के द्वारा अपनी आत्मा को पवित्र करें ॥

ललिता—(ईषत हास्य प्रकाश की भाँति मस्तक अवनत कर के तूष्णीभाव में अवस्थित रहने लगी) ॥ २२५ ॥

विशाखा—ललिते ! तुम्हारा अभिप्राय जान लिया। अतः एक दिन के लिये अनुमोदन कर रही हो ॥ २२६ ॥

कृष्ण—(सहर्ष के साथ) नान्दीमुखी ! आपने अत्यद्भुत आश्चर्य देखा। अत एव जिज्ञासा कीजिये। ये सब गोपसुन्दरियों ने मेरे कर्णयुगल में ताण्डवारम्भकारि मकर कुण्डल युगल का क्यों शुल्क योग्य नहीं बनाया है ॥ २२७ ॥

नान्दीमुखी—हे कीर्त्तिदाकीर्त्तिदायिनि राधे ! यह अतिशय अयुक्त है क्यों कि वनमालि की तो वृन्दा है, उस को वनमालि-सम्बन्ध में शुल्कविषय में अर्पण ॥ २२८ ॥

श्रीराधा—सखि वृन्दे ! क्यों तूष्णीभाव में अवस्थित रहती हो ? शीघ्र अपने पक्ष का प्रकाश करो अर्थात् तुम श्रीकृष्ण को पक्षपातिनी हो किम्बा हमारी पक्षपातिनी यह व्यक्त करके कहो ॥

कृष्ण—(वृन्दा के मुख के प्रति दृष्टिपात करके लोचन-कोण का कुञ्चन करने लगे अर्थात् चक्षुः के द्वारा संकेत कर स्वाभिप्राय प्रकाश करने लगे)

वृन्दा—नागरेन्द्र ! नेत्र-ताण्डव निरर्थक हुआ है क्यों कि वृन्दा तो वृन्दाबनेश्वरी की अनुवर्त्तिनी है ॥

सब—(उच्च-हास्य करके) भगवती लज्जे ! कहाँ गई ? प्रसन्न हो, प्रसन्न हो ॥

वृन्दा—सखि वृन्दाबनेश्वरि ! यहाँ पर मेरी विज्ञप्ति को कुछ अवसर प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् कुछ निवेदन करने की इच्छा कर रही हूँ ॥ २२९ ॥

राधा—सखि वृन्दे ! कैसी विज्ञप्ति ?

वृन्दा—साधुगण सर्वतोभाव से कहते हैं कि जुआरिसभा से घट्टपाल की सभा अतीव प्रशंसनीय है अर्थात् विरुद्ध लक्षण के द्वारा अत्यन्त घृणित है। इस लिये यदि मल्लक्षण सरल जन को शुल्कार्थ विक्रय करने में प्रवृत्त होना है तो इस अयाग्य स्थल में न कर स्थानान्तर में विक्रय करा ॥ २३० ॥

कृष्ण—(ईषत हास्य के साथ) निश्चय बोध होता कि ये सब अनुपम पूर्ण शोभावाली सुन्दरियाँ अब तक अन्य किसी के द्वारा सम्भुक्ता नहीं हुई हैं। अतएव ये सब राजकुल में योग्या हो सकती हैं परन्तु वृन्दा तो चिरकाल से अत्यन्त रूप से सम्भुक्ता हुई है जो वैभव शून्य हो गई। अतः इस लिये इस का प्रहण करना आवश्यक नहीं है ॥

राधा—(उच्च हास्य कर के) अलाभवश अङ्गना परित्याग करने का नाम तुरङ्ग ब्रह्मचर्य्य है ऐसा पण्डितगण कहते हैं। अर्थात् अदृष्ट में स्त्रीलाभ नहीं अत एव वह लोगों के निकट अपने को ब्रह्मचारी करके व्यक्त करता है। यह ऐसा ही है ॥ २३१ ॥

मधुमङ्गल—(परस्पर मन्त्रणा करके) विशाखे ! मैं कायस्थ-विद्या में अर्थात् गणितशास्त्र में पारदर्शी हूँ। इस लिये निश्चय तुम्हारे घट्टदान विषय में अनुकूल रहूँगा, अत-एव मुझ को पारितोषिक प्रदान करो ॥ २३२ ॥

विशाखा—आर्य्य ! नवीन शक्कर दुँगी।

मधुमङ्गल—विशाखे ! निश्चय ज्ञात हुआ, तुम परिहास कर रही हो ॥

विशाखा—भगवान् सूर्य की शपथ करती हूँ ॥ २३३ ॥

मधुमङ्गल—(हर्ष के साथ श्रीकृष्ण के निकट गमन करके)
प्रियवयस्य ! मैं मान के समय शतकोटि प्रमदारोष-भञ्जन में
पारदर्शी हूँ । दीपावली-उत्सव में शतकोटि सुरभीपूजा का
आचार्य हूँ । अत एव आज यह महा-महोत्सव में पहले
अप्रार्थित शतकोटि दक्षिणा प्रदान करो ॥

कृष्ण—(स्मरण करके तूष्णीभाव अवलम्बन करने लगे) ॥ २३४ ॥

मधुमङ्गल—(आड़ में) विशाखे ! जब प्रियवयस्य कोई
उत्तर नहीं देता है तब तो निश्चय जानो इस में उन की सम्मति
है । क्योंकि मौन ही सम्मति को व्यक्त करता है । अतः प्रातः-
श्रुत का प्रदान करो, (ऐसा कह कर अञ्जलि विस्तार करता है)

विशाखा—(ईषत् हास्य करके) लो यह शक्कर,

(ऐसा कह कर खप्परांश प्रदान करने लगी)

मधुमङ्गल—(उच्च हास्य करके) आश्चर्य्य ! मैं सरलब्राह्मण
हूँ, खांड का लोभी हूँ, शक्कर माँगा था, परन्तु तुम सब ने
कुटिलता पूर्वक अर्थान्तर कल्पना करके मेरे हाथ में खप्पर टुकड़े
दिये । ठहरो तुम सब को भली भाँति निष्कृति कर रहा हूँ ।
(ऐसा कह कर श्रीकृष्ण के समीप जाकर) प्रियवयस्य ! काम
तो छोटा सा है इस में विलम्ब क्यों कर रहे हो, शुल्क ग्रहण
कीजिये ॥ २३५ ॥

कृष्ण—सखे मधुमङ्गल ! मैं मधुसूदन अर्थात् भ्रमर हूँ ।
रेफदोनों में आधिका नाम्नी भ्रमरी समागत हुई, पक्षान्तर में
राधिका नाम्नी भ्रमरी अर्थात् कामिनी उपस्थिता है । अतः इस
का ग्रहण करना उपयुक्त है ॥

वृन्दा—यह प्रफुल्ल चम्पकलता ही सत्पुण्य मधुसूदन के लिये
उपयुक्त है ॥

कृष्ण—वृन्दे ! तुम तत्त्व-बोध में अनभिज्ञा हो, क्यों कि
मधुसूदन पक्ष में राधा ही अनुरूपा है । जिस के नामाक्षर
विपरीत रूप में पाठ करने पर मधुमयी “धारा” यह सम्पन्न
होता है ॥ २३६ ॥

चित्रा—हे गोकुलवीराग्रगण्य ! ये समस्त गोपियाँ अप्रतिम
पूर्ण शोभाशालिनी हैं । तुम ने स्वयं सम्भावना योग्य बनाया
है । अतः पांचवृन्द के लिये हम सब में से एक का ही ग्रहण
करना किस प्रकार उपयुक्त होगा ॥ २३७ ॥

वृन्दा—सखि चित्रे ! तुम प्रशंसा करने योग्य हो क्यों कि
तुमने दुर्धर विशृंखल हस्ति को कोमल वाक्यरूप लतापल्लव के
द्वारा स्तम्भित किया है ॥ २३८ ॥

मधुमङ्गल—प्रियवयस्य ! शत गुण शुल्क ! यहाँ पर शत
शब्द का असंख्य वाचक अर्थ परित्याग कर पंक्तिगणना में दम
को पर्यवसित करने के कारण हम सब उद्यान चक्रवर्ती के निकट
अत्यन्त अपराधी हो रहे हैं ॥ २३९ ॥

कृष्ण—सखे ! उत्तम ! उत्तम ! तुम प्रियनिष्ठ रसमाधुरी
पान कराने के लिये कायस्थिका अर्थात् शरीर-स्थित रसवती
पाकशाला के रंधनाव्यक्ष हो रहे हो ॥ २४० ॥

हम सब ने प्रधान नरपति के अभिप्राय के अनुसार असंख्य धन
को अङ्गीकार किया है । परन्तु यहाँ स्मृतिशास्त्र यह कह रहा है
कि जो स्वभाव से गर्वशील हैं एवं सम्पत्ति के द्वारा अत्यन्त उन्नत
हैं उनके लम्बे छल प्रमाणित होने पर यथेष्ट दण्ड दिया जा
सकता है ॥ २४१ ॥

ललिता—गोपजाति को दण्ड-ग्रहण के बिना क्षणकाल के
लिये अन्य कोई अवलम्बन नहीं है । अतः दण्डग्रहण करना
उपयुक्त हो रहा है ॥ २४२ ॥

कृष्ण—यद्यपि इन पांचजन से शुल्क की पूर्णता नहीं होती है तो भी मैं दूसरी (राधा) की रक्षा करूँगा क्योंकि इसकी चन्द्रकला उन्मिलन में क्षमता है अर्थात् ललिता से दूसरी श्री-राधा नखांक-प्रवृत्ति धारण करने में समर्था है। तिथिपक्ष में द्वितीया तिथि चन्द्रकला धारण करने में समर्थ होती है ॥२४३॥

राधा—(उच्च हास्य करके) हाय ! हाय ! पहिले देवता आराधन विषय में कुसुमचयनकारिणी खञ्जनाक्षी रमणियों को यह स्थान मङ्गलजनक था। वर्तमान एक महाउन्मत्त महा मतङ्ग ने (हस्ति) आकर समस्त आक्रमण कर भयंकर कर दिया। अब गोवर्द्धन की तलहटी का उचित अवलम्बन देख रही हूँ। हाय धिक् ! धिक् ! दान्तीद्र के दम्भारम्भ से वाटपाड़ (लूटमार) प्रारम्भ हो गया है। अतः किस से निवेदन करूँगी। यह राजपुत्र है इनका नियन्ता कौन हो सकता है।

कृष्ण—नान्दीमुखी ! इनके इन गुरुतर बचनों की अनर्गलता तुमने सुनी है। मैं साधु-मार्ग रक्षा पूर्वक अति ख्यातिशाली हो रहा हूँ। इसने वाटपाड़िता अपवाद रूप कालिमा का आरोपण कर अपनी निर्भयता प्रकाशित की है। अतः मैं इस को भुजारूप दण्ड-युगल के द्वारा गाढ़रूप से पीड़ित करूँगा ॥२४४॥

नान्दीमुखी—(सम्मुख जाकर निवारण करती हुई) हे सुन्दरवीर ! मैं महातापसी के परिवार की हूँ। मेरे समक्ष इस कुलवाला का पीड़न अत्यन्त अयोग्य है ॥२४५॥

कृष्ण—मैं गोष्ठराजकुमार हूँ, अत्यन्त अहङ्कारियों का चूड़ामणि हूँ। आज किस प्रकार से गर्वित युवतियों की दर्पगरिमा का उपेक्षा करूँगा।

पक्षान्तर अर्थ—मैं राजपुत्र हूँ, युवकगण का चूड़ामणि हूँ आज कि प्रकार से गर्वित युवतियों का कामोद्वेग की उपेक्षा करूँगा ॥२४६॥

ललिता—हे कृष्ण ! ठीक कह रहे हो, तुम इस विषय में अपराधी नहीं हो, घाटीदेवी का यह कोई अपूर्व प्रसाद है, क्यों कि यद्यपि तुम सत्कुलोत्पन्न राजपुत्र हो तो भी तुम को धूर्त-चूड़ामणियों की विस्मापनकारिणी किसी विद्याने अध्यापित कराया है ॥२४७॥

कृष्ण—(दर्प के साथ) तुम सब घट्टाधिराज की अवज्ञा कर शुल्क प्रदान में पराङ्मुख हो विवाद करने में प्रवृत्त हो रही हो तब निश्चय बोध होता है इन दुर्गम विषम गिरितटों में हम से युद्ध करने की इच्छा कर रही हो अथवा कामयुद्ध के लिये इच्छुक हो ॥२४८॥

राधा—हे मोहन ! हम सब कैसे सहन करेंगी। क्यों कि "अत्यन्त घर्षण से चन्दन में से अग्नि उत्पन्न होती है" यह शास्त्र बचन प्रमाण है, अतः हम से दोषारोप मत करना ॥२४९॥

कृष्ण—हे देवि ! प्रसन्न हो, अयोग्य भ्रमकारिणी कुटिनाटी (कौटिल्यनाट्य) का परम चतुर मुझ में प्रयोजन नहीं है। हमें प्रार्थित धनों का प्रदान करो, अथवा हमारे साथ युद्ध में प्रवृत्त हो ॥२५०॥

वृन्दा—अहो ! तुम महान योद्धा हो, युद्धविषय में तुम्हारी बड़ी ख्याति है, हम सब अवला हैं, तुम्हारे साथ युद्ध करने में किस प्रकार समर्थ होंगी ? ॥२५१॥

कृष्ण—हे वनचारिणी वृन्दे ! तुम इन के स्वरूप जानने में अनभिज्ञा हो। देखो, इन के उन्नत श्रोणिदेश रथ रूप है, हस्ति के समान पदविन्यास के द्वारा ये सब उज्ज्वलान्वित हैं, इन के सुन्दर पद पदातितुल्य शोभायमान है, और चञ्चल केशकलाप चँवर के समान शोभाधारण कर रहा है। अतः ये सब हरिण-नयना कन्दर्पसैन्य रूप में विराजमाना है ॥२५२॥

राधा—हे नागर ! तुम्हारे कुलवालाविमोहक यह घट्टेन्द-
जाल प्रत्यक्ष हो गया है । अतः पुनः बिस्तार में प्रयोजन नहीं है,
मैं सखियों के साथ यज्ञवेदिका में चल रही हूँ ॥ २५३ ॥

कृष्ण—हे घूर्णिताक्षि ! तुम घट्टशुल्क के निमित्त अवरोद्धा
हुई हो, किस प्रकार जाओगी ? यदि आज्ञा का उल्लंघन कर
गमन करोगी तो यह चपल तुम्हारा आकर्षण करेगा ॥ २५४ ॥

चम्पकलता—क्या तुम भोजराज कंस के अधिकारी हो रहे
हो कि जिस कारण हम कर दान के द्वारा तुम्हारी सेवा
करें ॥ २५५ ॥

कृष्ण—चम्पकलते ! मैं यथार्थ भोगराज का अधिकारी हूँ
परन्तु हस्त के द्वारा आराधन करने पर मेरी अति प्रसन्नता नहीं
होगी, इसी लिये तुम सब यत्न के साथ जिन सुवर्णकुम्भों का
सङ्गोपन कर रही हो उन का स्पर्श कराओ ॥ २५६ ॥

ललिता—(सम्भ्रम के साथ) हे मुग्ध-रमणियों के विडम्बन-
चातुर्य में गर्वीयमान ! देखो यह विदग्ध-श्रेष्ठा गोपयुवती-
बल्लोयों राजा के घट्टदान का छेदन कर अबलीला से चल रही हैं
अतः तुम जाकर उद्यानचक्रवर्त्ति के निकट फुत्कार करो ॥ २५७ ॥

कृष्ण—मैं अपनी भुजाओं से महापराक्रमी हूँ, अतः तुम्हारे
लिये फुत्कार क्यों करूँ । क्या हस्ति-दर्पहारी सिंह हरिणीवृन्द
विमर्दन में प्रयास करता है ? ॥ २५८ ॥

राधा—यदि समक्ष कौतुकवश बलवती ललिता खड़ी होती
है तो हरि क्या कर सकता ? अर्थान्तर में—यदि सिंह विमर्दक
सरभ रूप ललिता समक्ष उपस्थिता है तो हरि रूप सिंह क्या
कर सकता है ॥ २५९ ॥

कृष्ण—पङ्कजाक्षि ! ययार्थ में कह रहा हूँ सुनो । तुम
कामदायिनी कल्पलता स्वरूपिणी हो, तुम बार बार विशाल

अधनु का कम्पन क्यों कर रही हो ? हमें यथा निर्दिष्ट अर्थ-
राशि का प्रदान करो अथवा सखियों के साथ सुन्दर रूप से युद्ध
में प्रवृत्त हो ॥ २६० ॥

ललिता—(वक्ररूप में देख कर) गोपिकाहरणकारी शङ्ख-
चूड़ का विमर्दन करने से तुम विक्रमशाली हो गये हो, अतः
युद्ध करने में तुम्हारा अभिलाष उपयुक्त है ॥ २६१ ॥

राधा—(सम्भ्रम के साथ) सखियों ! अब विश्राम में
प्रयोजन नहीं । अतः अपनी अपनी गगरी को उठाओ ॥ २६२ ॥

कृष्ण—सखे सुबल ! तुम शीघ्र पंच स्वर्णकलश को ग्रहण
कर घट्टांगन को भूषित करो, बाद में मैं पंच मुखी को धारण
करूँगा क्यों कि यह पुत्रागप्रिया अर्थात् पुरुष रत्न की प्रियतमा
है । पुत्राग कृष्ण है पक्ष में—महासर्प । श्रावण पञ्चमी नाग-
पञ्चमी करके प्रसिद्ध है ॥ २६३ ॥

सुबल—(प्रदक्षिणा करके) ललिते ! तुम्हारे ये समस्त
कलश अत्यन्त भारयुक्त के कारण दुःखप्रद हैं, अतः उन को
घट्टगृह में रख आता हूँ । तुम सब सुख से गमन करो ॥ २६४ ॥

ललिता—(अवज्ञा हास्य के साथ देख कर) हा धिक् !
हा धिक् ! अरे प्रसिद्ध चौर-चक्रवर्त्तिलीला के अदात्य ! इस
ललिता के सोते हुए भी ऐसा साहसी कौन है जो कि तृण तक
का हरण कर सकता हो ? जगने में तो कहना ही क्या है ॥ २६५ ॥

सुबल—(भय के साथ प्रत्यावर्त्तन करके) प्रियवयस्य ! मैं
अकेला हूँ, कैसे पञ्चकलश का आहरण करूँगा अतः सखाओं
को सङ्ग में लेकर स्वयं आजाओ ॥ २६६ ॥

कृष्ण—सखे ! तुम सुबल (सुष्ठु बलवान्) होकर भी
दुर्बल क्यों हो रहे हो क्यों कि ललिता के इस सामान्य आटोप
से उच्चाटित हो गये हो ॥ २६७ ॥

सुबल—(सपरिहास्य पूर्वक व्यवधान से) प्रियवयस्य ! केवल वचन सुलभ दर्पराशि का प्रयोजन नहीं है, तुम्हारा पराक्रम भली भाँति प्रत्यक्ष हुआ है । उस दिन श्रीराधा के साथ पाशक्रीड़ा में ललिता के द्वारा छल से राधा की जय घोषणा कर मुरली छीन ले जाने पर तुम ने कौतुभमणि को छिपाया और स्मेरमुखवाली गोपवालाओं के कटाक्ष करने पर तुम भयभीत हो गये थे ॥ २३८ ॥

कृष्ण—(स्मरण करके) अरे मिथ्या-बोलने में पटु ! मौन हो जाओ, महासमीरण रूप मेरे प्रबल वेग का आरम्भ हुआ, रम्भावृक्ष की भाँति अतिक्षुद्रा ललिता का कहना ही क्या है । वह तो मेरे प्रबल प्रताप से शीघ्र ही डर जावेगी ॥ २६६ ॥

ललिता—विशाखे ! प्रियसाख के भ्राता उस योगीन्द्र श्रीदामा की बन्दना करती हूँ, जो प्राणायाम के द्वारा मारुत को जीत कर गोपीरूप केलावृक्षों की गोष्ठी को प्रफुल्लित करेगा ॥ २७० ॥

विशाखा—(ईषत् हास्य पूर्वक) ललिते ! उत्तम स्मरण कराया, जिस का पूर्वकाय (शरीर) श्रीदामचन्द्र के द्वारा अङ्कित है, जिसने भाण्डीर रूप पूर्व पर्वत का आश्रय किया है, उस कृष्ण जलधर को देख कर विद्युत् की समाना यह वृन्दा हास्यमुखी हुई थी ॥ २७१ ॥

अर्जुन—(संस्कृत में) यहाँ हम सब मित्रों के गण में कौन सखा हम सब को जय करेगा अथवा हम सब किस को पराजित करते हैं यह तो वयस्यत्व मात्र का कारण है परन्तु तुम्हारे भ्रातृत्व कारण नहीं है । अत एव तुम सब का यह गर्व वृथा है ॥ २७२ ॥

कृष्ण—(श्रीराधा को देख कर) हे गौरि ! यदि तुम मन की चतुराई से कांचनराशि को देने की इच्छा नहीं करती हो तो

गौरिकादि से चित्रित गिरिगह्वर में प्रवेश करो ॥ २७३ ॥

(ऐसा कह कर राधा को ईषत् आवरित करने लगे)
ललिता—(बीच में उपस्थित होकर) हे रतिबल्लभ ! सुनो, राधा का पति इन के माधुरीमाहात्म्य को श्रवण कर पादपद्म स्पर्श सौभाग्य-भाजन से अपने को अयोग्य मान कर भयचित्त से अपने गृह में केवल रह कर अपने को कृतार्थ मान रहा है और दूर से सादर बन्दन कर रहा है ॥

(इस प्रकार अर्द्धोक्ति में श्रीराधा असूया के साथ ललिता के प्रति दृतिपात करने लगी) ॥ २७४ ॥

ललिता—(ईषत् हास्य करके) हे राधे ! तुम तो अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं कर रही हो, इस में तुम्हारी लज्जा क्यों, जिस से तुम्हारा अभियोग व्यक्त नहीं हो रहा है । मैं तुम्हारी सखी हूँ, यथार्थ कहने में प्रवृत्त हो रही हूँ । इस से यदि कुछ व्यक्त होता है तो वह तो इष्टापत्ति है । क्यों कि उत्सुक रूप महाराज की प्रवलता व्यक्त होने पर लज्जादि दस्यु का प्रभाव कैसे हो सकता है ।

जो हम सब की प्रियसखी का अङ्गसमूह कौमार समय से लेकर अब तक पुरुष-जन की सौरभ-कणिका को नहीं जान पाया, और सेवा-विषय में उत्सुक होकर भी नवयौवन के भय वश मन्दगामी होकर अत्यन्त रूप में सेवा नहीं कर सका, महासती-कुलचक्रवर्त्तिनी प्रियसखी के उन अङ्गों के सन्दर्शन में कृतनिश्चय जन को महासाहसिक धुरन्धर कहा जा सकता है । स्पर्श का तो कहना ही क्या है । अत एव दूर गमन करो ॥

सब—(ईषत् हास्य करने लगे) ॥ २७५ ॥

मधुमङ्गल—(उच्च हास्य करके) ललिते ! इस प्रकार अत्यन्त गर्व का प्रयोजन नहीं है । तुम अपनी प्रियसखी गान्धर्विका को

जिज्ञासा करो। उन्होंने दुर्वासामुनि के मुख से हमारे प्रियवयस्य श्रीकृष्ण के आशौशव ब्रह्मचर्य—माधुर्य का स्वयं श्रवण किया है ॥ २७६ ॥

सुबल—ललिते ! मुनिपुत्र दुर्वासा ने सत्य कहा है। अतः उन के बचन में विश्वास करो। यद्यपि प्रियवयस्य महावीर-व्रत-वाला है तो भी नारीगण से भय प्राप्त हो जाता है ॥ २७७ ॥

अञ्जुन—हाँ स्मरण हुआ है, मैं ने बार बार देखा है, इन के बलया-शब्द से सम्भ्रम प्राप्त कर प्रियसखा कम्पायमान एवं पुलकिताङ्ग हो जाता है ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य के साथ) ललिते ! यहाँ पर तुम्हारा विरोध करना कल्याण कारक नहीं है, क्यों कि समानधर्म वाला साधक दोनों की एक ही साथ निवास रूप सौहार्द माधुरी शीघ्र ही महाव्रत-सिद्धि के लिये होती है ॥ २७८ ॥

राधा—(कुटिल नयनाञ्जल निक्षेप पूर्वक अवहेलना के साथ किञ्चित् फिर कर) नागर ! तुम्हारी चपलचातुरी अवशेष नहीं है अत एव और पिष्टपेषण मत करो ॥ २७९ ॥

कृष्ण—(आवरण करके) वृन्दे ! देखो देखो, यद्यपि हमारे परिहास बचन से अत्यन्त परमानन्द उत्पन्न हो रहा है तो भी उस का कर्णप्रान्त में ईषत् स्थान न देकर गर्वनिबन्धन अवहित्या से राधा अति-गूढ़हास्य से प्रफुल्लमुखी हो रही है। जो भी हो वह अनादर सूचक बचन भङ्गी के द्वारा लाघव विस्तार कर रही है। यह तो मैत्रीगौरव अपेक्षा से अर्थात् चन्द्रावल्यादि-निष्ठ तदीयतामय प्रणय से मेरा शतगुण प्रीतिविधान कर रही है ॥

राधा—(किञ्चित् हास्य करके ललिता के कर्णमूल में कहने लगी) ॥ २८० ॥

ललिता—कृष्ण ! तुम इस गोकुलबीच में विख्यात गुण वाले युवराज हो। इसी लिये हम सब मौन होकर अवस्थित हैं। अब यदि तुम मर्यादा-उल्लङ्घन में प्रवृत्त होते हो तो हम सब अपने कार्य साधन में क्यों उपेक्षा करेंगी ॥ २८१ ॥

अञ्जुन—वह काय क्या है जिस की उपेक्षा नहीं करना चाहती हो ? ॥ २८२ ॥

ललिता—गोपगण से निज वृन्दावन की रक्षा, इस से भिन्न अन्य कार्य क्या है ? ॥

अञ्जुन—(अवहेलना के साथ हास्य पूर्वक हुंकार करते मस्तक घूर्णन करने लगा) ॥ २८३ ॥

विशाखा—(ईषत् हास्य पूर्वक निकट में जाकर) ललिते ! गोकुलयुवार्तियों की चक्रवर्त्तिनी प्रियसखी आज्ञा कर रही है ॥

ललिता—वह आज्ञा कैसी है ? ॥ २८४ ॥

विशाखा—ये समस्त गर्वित गोप लतापुञ्जमञ्जन दक्ष लक्ष कोटि गौ रक्षा करते हुए फलों से उदर भरण एवं पुष्प-पल्लवों के द्वारा पारस्परिक वेश रचना कर बहु दिनों से वृन्दावन का विध्वंस कर रहे हैं। अतः निश्चय करके कहो कि वे सब यहाँ से चले जावें नतुवा कर प्रदान करें ॥ २८५ ॥

मधुमङ्गल —(क्रोध के साथ) हे विपरीतबादिनि ! मौन-वलम्बन करो, अथवा इस में तुम्हारा किञ्चिन्मात्र दोष नहीं है। प्रियवयस्य की कारुण्यता ही अनर्थकारिणी हुई। क्यों कि सरल कारुण्यता के द्वारा असरला तुम सब को वृन्दावन में प्रवेश करने का अवसर देकर अनुग्रह किया गया अत एव यह अयुक्त प्रलाप नहीं है ॥ २८६ ॥

चम्पकलता—अहे आर्य्य ! तुम तो अनार्य्य हो रहे हो, क्यों कि बिना विचार से व्यर्थालाप कर रहे हो ॥ २८७ ॥

ललिता—(संस्कृत में) सखि। सौ बार अभ्यास किये जाने पर भी यह व्यक्ति सुनता नहीं है और अपने नेत्रों से देखे गये महोत्सव का स्मरण नहीं कर रहा है। अतः श्रुति-स्मृति रूप अपने नेत्रों से रहित इस का तिरस्कार मत करो, यह अत्यन्त मूढ़ है ॥ २८८ ॥

विशाखा—सखि नान्दीमुखी! आपने प्रियसखी के उस महाभिषेक-महोत्सव का स्मरण किया है? ॥ २८९ ॥

नान्दीमुखी—विशाखे! इस जगत् में ऐसा कौन प्राणी है जो उस महा-महोत्सव को विस्मृत कर सके? ॥ २९० ॥

चित्रा—नान्दीमुखी! यद्यपि नेत्रों से प्रत्यक्षीकृत किया गया है तो भी लोकातीत के कारण मेरा कर्ण सुनने को उत्तार-लित हो रहा है अत एव श्रवण कराओ ॥ २९१ ॥

नान्दीमुखी—सखि चित्रे! श्रवण करो, इस वृन्दा ने भगवती पौर्णमासी के निकट गमन करके निवेदन किया था कि हे योगेश्वरि! वृन्दावनराज्य में श्रीराधा को अभिषिक्त कीजिये। क्योंकि हम सब के समक्ष अशरीरिणी आकाशवाणी ने स्पष्ट रूप से आदेश किया है ॥ २९२ ॥

वृन्दा—(मन मन में) मुकुन्द की आज्ञा के अनुसार आकाशवाणी का छल कर मैंने आर्या से यह विषय कहा था ॥ २९३ ॥

नान्दीमुखी—तदनन्तर महातापसी भगवती के आह्वान करने पर पांच जन देवी उपस्थित हुईं ॥ २९४ ॥

अञ्जुन—वे सब कौन हैं ॥ २९५ ॥

वृन्दा—एक देवी तो जगद्विरूपाक्ष देवकीकन्या, जिसने कंस की भर्त्सना कर के गमन किया था। दूसरी सूर्यपत्नी संज्ञा, तीसरी छाया, चौथी सूर्यपुत्री यमुना एवं पांचमी मानसगङ्गा है ॥

चित्रा—उस के बाद उस के बाद? ॥ २९६ ॥

नान्दीमुखी—मार्त्तण्ड(सूर्य) की छोटी महिषी छाया ने कहा है भगवति! हम सब किसी भी प्रकार आप की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकती। हम सब ने आप का शासन मस्तक पर धारण कर लिया है। परन्तु कहाँ तो महीयसी वह राधिका और कहाँ सोलह कोस मात्र विस्तीर्ण यह वृन्दावन-राज्य। इस से मेरा मन भली भाँति प्रसन्न नहीं हो रहा है। अतः ब्रह्माण्डाधिपत्य में राधा को अभिषिक्त कीजिये ॥ २९७ ॥

(उस के बाद एकानंशा बिन्ध्यवासिनी देवकीकन्या पौर्णमासी के प्रति दृष्टिपात करके कहने लगी) ॥ २९८ ॥

(संस्कृत में) सखि सवर्णे सुनो, वेद के वस्तुज्ञापकरूप जो वीर्य (पराक्रम), ज्योतिष्तोमादि यज्ञ के विशिष्ट फलोत्पादक रूप जो पराक्रम, तीर्थों के पावनत्व रूप जो पराक्रम, मन्त्रसमुदाय के दुर्घट-घटनरूप जो पराक्रम, तपस्या के वाञ्छित फलप्रापक रूप जो पराक्रम, उन उन कर्म साध्य स्वर्ग समूह के इन्द्रियजात सुख-प्राप्तिरूप जो पराक्रम, तद्भोक्ता स्वर्गवासियों के सुख-प्रसन्नता रूप जो पराक्रम, अणिमादि-सिद्धियों के ऐश्वर्यसुख प्रापक रूप जो (पराक्रम), सिद्धिप्राप्त महत्तु जनों के योगैश्वर्यादि रूप जो पराक्रम, अन्तरङ्गा चिच्छक्ति के निरुपम कल्याणमय जो नित्य गुण तथा चिच्छक्ति के तन्मयत्व-सर्वोत्कर्ष लक्षण विशिष्ट कार्य स्वरूप वैकुण्ठ के सर्वोत्कृष्ट लक्षण रूप जो पराक्रम है उन सब से विशेष जाति और प्रमाण के द्वारा गहन प्राप्त अधिक रूप से पराक्रम मथुरामण्डल में विराजमान है, पुनः उस से भी अधिक तर गहन रूप से सोलह कोस वृन्दावन में अवस्थित है। अतः कोटिब्रह्माण्डाधिपत्य की बात ही क्या रही। ब्रह्माजी ने वृन्दावन के एक ही प्रदेश में उन समस्त ब्रह्माण्ड का दर्शन किया है ॥ २९९ ॥

चित्रा—उस के बाद, उस के बाद ?

नान्दीमुखी—उस के बाद समस्त लोगों के प्रफुल्लित होने पर दिव्य कुसुम वर्षण शील आकाश मण्डल के प्रति दृष्टिपात करके सूर्यपुत्री यमुना ने कहा—हे भगवति ! विरिञ्चिपुत्री सरस्वती यहाँ आने के लिये अत्यन्त उत्सुक होकर भी आप के आह्वान के बिना शङ्कितचित्त से नहीं आ पा रही है । वह तो दिव्य पिटारी लेकर आकाश में आप की आज्ञा की प्रतीक्षा में अवस्थित है । अतः उन को बुलाईये । यमुना के इस प्रकार निवेदन करने पर पौर्णमासी सरस्वती को बोलाने लगी । तदनन्तर वाग्देवी सरस्वती प्रवेश कर दिव्य मञ्जुषिका उघाड़ कर कुछ कहने लगी । परन्तु सरस्वती के अर्द्धवचन बोलने पर वृन्दा अत्यन्त हर्षिता होकर नान्दीमुखी वचन का निवारण कर सहर्ष कहने लगी ॥३००॥ ब्रह्मपत्नी सावित्री ने पद्ममाला, इन्द्रपत्नी शची ने स्वर्णसिंहासन, कुबेरगृहिणी ऋद्धि ने रत्नालङ्कार, वरुणप्रिया गौरी ने छत्र, पवनपत्नी शिवा ने चंवर युगल, अग्निभाय्या स्वाहा ने दो वस्त्र और यमभाय्या धूमोर्णा ने मणिदर्पण को मेरे हाथ में देकर भेजा है ॥ ३०१ ॥

चित्रा—उस के बाद, उस के बाद ?

वृन्दा—तदनन्तर श्रवणवृत्ति रोधकारी स्वर्गवाद्य समूह के आकाश मण्डल को गम्भीर करने पर, तुम्बुरादि गन्धर्वगण के मधान्तवृत्ति हो कर आनन्द के साथ गानारम्भ करने पर तथा अप्सराओं के गगन पर नृत्यारम्भ करने पर, कल्याणमयी वे सब सुरसुन्दरियाँ आनन्द के साथ श्रीराधा का अभिषेक आरम्भ करने लगी ॥ ३०२ ॥

(ऐसा कह कर नान्दीमुखी के प्रति दृष्टिपात करके लज्जा के साथ) उस के बाद उस के बाद ?

नान्दीमुखी—तदनन्तर आनन्द चित्त से ब्रजराजनन्दन के देखते हुए भगवती की आज्ञा से उन भुवन पावन नदियाँ अपनी सङ्गिनी देवियों के साथ तुम सब की सखी श्रीराधा को तुम सब के साथ स्वर्णसिंहासन में बैठा कर दिव्य महौषधि रसामृत से मणिकुम्भों को पूर्ण करके उन के द्वारा वृन्दावनराज्य के आधिपत्य का अर्पण करने लगी ॥ ३०३ ॥

चम्पकलता—(रोमाञ्च के साथ) उस के बाद, उस के बाद ?

नान्दीमुखी—तदनन्तर हाथ उठा कर यह सौगन्धिकमाला है, मेरी जननी सावित्री ने स्नेह करके भेजा है । (यह सुन कर देवकीपुत्रि एकानंशा देवी ने हाथ से माला ले कर गोकुलानन्द के कण्ठ में अर्पण की ॥ ३०४ ॥

तदनन्तर परिहास मुखी यमुना कहने लगी—अहो आश्चर्य ! बन्धुओं का स्नेह धर्मविस्मरण में पटु होता है । जिस स्नेह के द्वारा विचक्षणव्यक्ति भी अविचार-कार्य में प्रवृत्त होता है । (ऐसा सुन कर बिन्ध्यवासिनी ने कहा यमुने ! तुम क्या अविचार में प्रवृत्ति देखी ? (यह सुन कर यमुना कहने लगी) ॥ ३०५ ॥

हे देवि ! मेरी प्रियभगिनी श्रीराधा की सौगन्धिकमाला तुमने अपने भ्राता को क्यों अर्पण की, ऐसा कहने पर बिन्ध्यवासिनी देवी हँसती हँसती श्रीकृष्ण के कण्ठ से मनोहर हार के साथ दिव्य सौगन्धिकमाला को उतार कर प्रियसखि के कण्ठ में निक्षेप कर कहने लगी, अयि ! अपनी माला प्रहण करो ॥ ३०६ ॥

कृष्ण—(ईषत हँसने लगे)

विशाखा—उस के बाद, उस के बाद ।

नान्दीमुखी—उस के बाद “इस हारने कठोर हृदय का सङ्ग किया, अत एव इस की आवश्यकता नहीं है” ऐसा कह कर सूर्यपुत्री यमुना कौतुक के साथ श्रीराधा-कण्ठ से हार उतार कर

मनोहर हरिकण्ठ में अर्पण करने लगी ॥ ३०७ ॥

ललिता—तदनन्तर बिन्ध्यवासिनी ने कंसारि के वक्षःस्थल से मृगमद उत्तोलन कर श्रीराधा को तिलकित किया ॥ ३०८ ॥

वृन्दा—(आनन्द से) उस के बाद भगवती पौर्णमासी उल्लास के साथ कहने लगी—अहे वृक्षगण ! तुम सब प्रफुल्ल हो कर परम सुख पूर्वक लतावधू के साथ विलास करो, हे विहङ्ग-गण ! तुम सब भृङ्ग के साथ रङ्ग-विस्तार करो, अहे पशुगण ! तुम सब अपने पराक्रम को प्रकाश करो । क्यों कि—श्रीराधा सखीरूप सेनापति समूह से समृद्धिशालिनी होकर उद्यानपालिनी वृन्दा को पवित्र अमात्यपद में नियुक्त कर तुम्हारे सम्बन्ध से राज्यशासन में प्रवृत्त हो रही है ॥ ३०९ ॥

(ऐसा कह कर आनन्द जाड़्य का अभिनय कर के) अहो ! कुन्दलता शत शत उद्भूतकलिकाएँ धारण करने लगी, मालती पत्राङ्कुर से चित्रित होकर विराज करने लगी, मनोरम नवमालिका विकसित हो उठी और चम्पकलता विगतशाखा होने पर भी प्रफुल्ला हो गयी ॥

पक्षान्तर में—कुन्दलता सखी शत शत उत्कण्ठा धारण करने लगी, चित्रा सखी स्तन तथा कपालोपरि तिलक रचना कर विराजने लगी, नवमालिकाधारिणी ललिता हास्यमुखी हो गई एवं विशाखा चम्पकलता की भाँति अत्यन्त हर्ष विस्तार करने लगी ॥ ३१० ॥

ललिता—नान्दीमुख ! दिनेशनन्दिनी यमुना ने उस समय जो बात कही क्या तुमसे बिस्मृत हो गई है ॥

नान्दीमुखी—ललिते ! उन्होंने तो हम सब के निकट मन्त्रणा की थी, क्यों भूलूंगी । उन की मन्त्रणा यह थी कि—आज से ही हमारे क्रीडाकानन में ललितादि हमारी प्रियसखियाँ सुख

स्वच्छन्द से पुष्पचयन करें ॥ ३११ ॥

यह कथा सुन कर बिन्ध्यवासिनी ने कहा—यमुने ! कुसुमसमूह तो माधवाधीन है ॥ ३१२ ॥

वृन्दा—(राधा को देख कर औत्सुक्य के साथ) सखि ! बिन्ध्यवासिनी देवी ने तुम को तिलकित किया है, शनिमाता छाया ने चूड़ाबन्धन किया, त्वष्ट्रानन्दिनी संज्ञा ने कवरी बाँधी, सखियों ने अलकृत किया, सूर्यपुत्री यमुना ने चंवर से तुम्हारा व्यजन किया और ब्रह्मानन्दिनी सरस्वती ने तुम्हारे मस्तक में मणिछत्र को धारण करवाया था, उन बातों का विस्मरण नहीं कर सकती हूँ ॥

राधा—(लज्जा के साथ) वृन्दे ! शान्त हो जाओ ॥ ३१३ ॥

कृष्ण—(स्वगत) यद्यपि अतिशयरूप में देखने के लिये इच्छा थी तो भी देववधूगण की लज्जा से मैं नतवदन हो गया । अतः राधा की उस शोभादर्शन में नयन-नियोग न कर सका । उस समय राधिका मेरे हृदयस्थित कौस्तुभमणि में प्रतिबिम्बित हुई । उसे सहसा एकवार मात्र देख कर मैं आनन्द सागर में डूब गया ॥ ३१४ ॥

सुबल—(अन्तराल करके) अजुन ! वह महाभिषेकस्थली राधा के उद्भूत प्रमद के लिये हुई है इसीलिये लोग उन्मादराधा (उमराई) कर के कहते हैं ॥ ३१५ ॥

मधुमङ्गल—(अन्तराल से) प्रियवयस्य ! समस्त स्मरण है, यह असत्य नहीं है, गोपिकाओं का यह दम्भमात्र है ॥ ३१६ ॥

राधा—सखि वृन्दे ! हमारे अभिषेक के बाद कानन के कर की आठ बर्ष से गणना करो ॥ ३१७ ॥

वृन्दा—(हास्य के साथ) वृन्दावनेश्वरि ! ये समस्त गोप प्रत्येक शतकोटि संख्या से गोचारण करते हैं । गोपों की संख्या

की गणना नहीं हो सकती। अतः काननकर का अन्त नहीं है। विचार में उस मूल्य के द्वारा कृष्णादि गोप तुम से क्रीत हो रहे हैं ॥ ३१८ ॥

ललिता—विशाखे ! वृन्दावनेश्वरी ने आज्ञा की है कि तुम बल पूर्वक इस चतुर मानी ब्राह्मणवदु के मणिभूषण को छीन लो ॥

मधुमङ्गल—(अन्तराल करके) प्रियवयस्य ! निश्चय इस का समाधान होना दुष्कर है अतः हम सब को पलायन करना कल्याण कर है ॥ ३१९ ॥

कृष्ण—अहे गोष्ठस्व ! अर्थात् स्वस्थान में अवस्थान कर दूसरे से द्वेष करने वाला ! जो भी हो, ललिता के लगुड़ देख कर भय मत पाओ। यह मैं सम्मुख में सुदर्शन विद्यमान हूँ ॥

राधा—(अपाङ्ग के द्वारा ईषत् श्रीकृष्ण को आर्लिङ्गित करके सुबल ! अब लज्जा करने की आवश्यकता नहीं, काननकर उपस्थित करो ॥ ३२० ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके देखने लगे) राधे ! तुम तो एक मात्र कानन की अधिकारिणी हो परन्तु घट्टाधिराज तो द्वादश वन के अधीश्वर है। तुम्हारा अधिकार स्वल्प देश को लेकर है, उस का तो समस्त जगद्वर्त्ति जनों पर आधिपत्य है, और तुम तो मण्डलेश्वरी हो वह तो मन्मथचक्रवर्ती है। अत एव हित कहता हूँ श्रवण करो। उस के शुल्क विषय में हठ मत करो ॥ ३२१ ॥

विशाखा—अहे सुबल ! ऐसा ही हो। तो भी उद्यानचक्रवर्त्ति के आज्ञावाहक घट्टाध्यक्ष के द्वारा हमारी वृन्दावन-चक्रवर्त्तिनी प्रियसखी का काननकर किस प्रकार मुक्त होगा ? ॥ ३२२ ॥

सुबल—(असूया के साथ) विशाखे ! तुम निश्चय खट्टा-रुद्धा हो रही हो, क्यों कि दुरन्त मद से घूर्णित होकर तत्त्व न

जान कर प्रलाप कर रही हो ॥ ३२३ ॥

विशाखा—(ईषत् हास्य के साथ) इस में क्या तत्त्व है, कहो तो श्रवण करूँ ॥ ३२४ ॥

सुबल—(असूया के साथ) विशाखे ! विस्तार का प्रयोजन नहीं है, संक्षेप से सार कथा कहता हूँ सुनो। जो महामन्मथ-चक्रवर्ती है वह निश्चय प्रियवयस्य रूप में विराजमान जानना। दोनों में कोई स्वरूपगत भेद नहीं है ॥ ३२५ ॥

अर्जुन—विशाखे ! यह तो अल्पमात्र है, सुनो, वह तो अश्रुतचर साधर्म वाला है अर्थात् उस के समान धर्मी कोई नहीं है। जो सम्सोहन माधुरीभर से नित्यनूतन तथा सर्वोपरि विराजमान है। उस प्रियवयस्य के समस्त गोकुलपतित्व में जो गोविन्दाभिषेक है वह किस के गर्वको खर्व नहीं करता है ॥ ३२६ ॥

मधुमङ्गल—(उल्लास के साथ) ललिते ! अर्जुन अच्छी बात कह रहा है। क्यों कि गोपालतापनी आदि उपनिषद् समूह इस को कृष्णवन करके कहता है ॥

वृन्दा—न्याय-शास्त्र वेत्ता पण्डितों ने निर्द्धारित किया है कि पूर्व एवं पर विधि से पर विधि बलवान है। जब कि नवीन राजा का अभिषेक हुआ है तो पुरातन को कौन मानेगा ॥ ३२७ ॥

मधुमङ्गल—वाचालता का त्याग करो, हमारे प्रियवयस्य हसकान्तार प्रदेश के अधीश्वर है। हम सब राजकुल पुरुष है। करहरणकारिणी तुम सब को खण्डकुण्डिका अर्थात् जीलावी की भाँति बोध करता हूँ ॥

कृष्ण—सखे सुबल ! श्यामल मण्डपिका को सुसज्जित करो, क्यों कि वहाँ वर्त्तमान इन शुल्कदासिकाओं को प्रवेशित किया जावे ॥ ३२८ ॥

राधा—आश्चर्य ! अहे चोर-चक्रवर्ती के मन्त्रिवर सुबल !

तुम सब किस लिये मेरी प्रियसखी श्यामला की इस व्रतवेदी को घट्टदान घटना के छल से दूषित कर रहे हो ॥ ३२६ ॥

कृष्ण—अहे बक्रचक्रवर्त्तिनि ! अर्थात् कुटिल समुदाय की अधिश्वरि ! अब राधाचक्र-भ्रमण का प्रयोजन नहीं है । यह मन्मथराज धनुर्धारि के अप्रगण्य है जो दुर्लक्ष मन का भेदन कर सकता है । अत एव यह घाटी इस के अधिकार में है ॥ ३३० ॥

राधा—(संस्कृत में) हे वंशिरसिक ! तुम्हारे आदि, मध्य एवं अन्त ये तीन स्थान बक्र हैं । तुम वंशी की कलध्वनि से जगत के प्रणयपात्र बन रहे हो, अतः तुम बक्रेश्वर देव हो ॥ ३३१ ॥

कृष्ण—(किञ्चित् हास्य के साथ) अहे ! तुम्हारे बचन, केश, भ्रू, दृष्टि, हास्य, गमन, अवगुण्ठन तथा हृदय ये आठ स्थान बक्र हैं अतः तुम अष्टाबक्र हा, तुम्हारी बन्दना करता हूँ ॥ ३३२ ॥

चम्पकलता—अहे ! यद्यपि तुम्हारी वक्रिमा लक्षित नहीं है तो भी तुम लक्ष बक्रिमशाली हो । अतः समान धर्म-वालों के साथ क्रीड़ा करो । हम सब अति विशुद्ध धर्म वाली हैं, हम सब को यहाँ से चले जाना उचित है ॥

कृष्ण—हे पुण्यवर्ति ! महादान के बिना जाना असम्भव है ॥ ३३३ ॥

चम्पकलता—सज्जनगण की सर्वत्र गति प्रसिद्ध है ॥ ३३४ ॥

चित्रा—पुरुषोत्तम ! तुम पुण्यश्लोक जन हो, अतः धर्म कर्म परायण हम सब को मुक्त करो ॥

कृष्ण—चित्रे ! इस चक्रवर्त्ति महाराज की विचित्र प्रक्रिया है अर्थात् आश्चर्य्य रीति है । इस राज्य में धर्म के द्वारा मोक्ष लाभ नहीं है परन्तु कामानुष्ठान के द्वारा निश्चय यह है ॥ ३३५ ॥

नान्दीमुखी—शास्त्रकार मुनियों की यह अविसम्बादिनी

रीति है क्यों कि वे काम के बाद मोक्ष का पाठ करते हैं । धर्म तो दूर में है । अर्थात् मोक्ष के लिये-पहले धर्म, तत्पश्चात् अर्थ, उस के बाद काम, तदनन्तर बाद में मोक्ष है । इसी लिये मोक्ष और काम में परस्पर सांमुख्य है । काम के बाद मोक्षलाभ होता है ॥ ३३६ ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके श्रीराधा के प्रति दृष्टिपात कर) हे शुल्कक्रीत रमणि ! नाथ के प्रीति-सम्पादन के बिना अन्य कोई गति नहीं है । अतः अभीष्ट सेवा के द्वारा इस दानीन्द्र को आनन्दित करो ॥ ३३७ ॥

ललिता—मोहन ! वह तपस्या के द्वारा घट्टपाल-दासीत्व की सिद्धि होती है । परन्तु मेरी प्रियसखी की कोई तपस्या नहीं देख रही हूँ । अतः इस के पक्ष में घट्टपालदासीत्व अति दुर्लभ है ॥ ३३८ ॥

नान्दीमुखी—अहे निकुञ्जलीला-कुञ्जरेन्द्र ! ललिता यह कह रही है कि तुम शुल्काध्यक्ष अवश्य हो । तुम सब के द्वारा सेवा समूह से प्रियसखी उपासनापात्री होती है क्यों कि यह समस्त युवतिगण की चक्रवर्त्तिनी है । अतः तुम विपरीत बात क्यों करती हो ? ॥

कृष्ण—(हर्ष के साथ) नान्दीमुखी ! ललिता की यह आज्ञा दुरतिक्रमणिया है । मैं राधिका की सेवा में प्रवृत्त हो रहा हूँ । अतः पहले हृदयङ्गम सातकुम्भकुम्भ में पंचशाखापल्लव समर्पण करूँ । (ऐसा कह कर राधा के निकट चलने लगे)

ललिता—(भ्रू भङ्ग के साथ उपक्रम करके) अहे नागरम्मन्य ! अर्थात् अपने को नागर मानने वाले ! यह दुर्लीलता लता विश्राम करें अर्थात् इस प्रकार दुष्टलीला प्रकाश मत करो ॥ ३४० ॥

कृष्ण—कृपणे ! यदि तुम ने शुल्क न देकर उस के परि-

(६६)

वर्त्तन में इस स्वाधीन राधा को बेच दिया है तो तुम यहाँ करिणी बेच कर अंकुश प्रदान में विबाद क्यों कर रही हो ?

(ऐसा कह कर धीरे धीरे गमन करने लगे)

ललिता—कृष्ण ! तुम तो अनभिज्ञ नहीं हो, मैं दुर्लालित्व-जनों की ललिता हूँ । अतः क्यों अपने माहात्म्य दिखाने के लिये प्रवृत्त हो रहे हो ? ॥ ३४२ ॥

कृष्ण—ललिते ! तुम अपने को सुवीर करके मान रही हो, देखो, विक्रमशालियों में चक्रवर्ती में सम्मुख इधर उधर भ्रमण कर रहा हूँ । अतः शक्ति-रहित कृत्रिम सर्प की भाँति वृथा गौरवतरङ्ग का प्रयोजन नहीं है, शीघ्र ही घट्ट-शुल्क प्रदान करो ॥ ३४३ ॥

ललिता—घट्ट-सम्बन्धीय घण्टारव का अब प्रयोजन नहीं । यदि शुल्क ग्रहण में नितान्त आग्रह रखते हो तब सन्ध्या के समय हमारे द्वार पर आ जाना । उत्तम गाढ़ा मठा प्रदान करूँगी । तात्पर्य-समस्त दिन याचक कर्मकारों को दे कर मन्थनी-तल में जो अवशेष रहेगा, जो अम्ल के कारण सब को अप्राह्य है उसे लवण मिला कर तुम को दूँगी जो तुम्हारे लिये अति रुचिकर होगा ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके नान्दीमुखी के प्रति दृष्टिपात करने लगे) ॥ ३४४ ॥

नान्दीमुखी—ललिते ! शतकोटि कामधेनु के पति गोपराज के घर में क्या गाढ़ा मठा नहीं है जिस से कि तुम्हारे घर पर जावेंगे ॥ ३४५ ॥

कृष्ण—हे सुदीर्घाक्षि राधिके ! तुम ललिता के फल्गु प्रलाप-कुहक समूह में प्रत्याशा मान कर शुल्क प्रदान में विमुख हो कर उपेक्षा मत करना । मैं निकटवर्ती होकर रहस्य वर्णन करता हूँ

(६७)

सुनो (ऐसा कह कर वक्षःस्थल में हस्त प्रदान करने की इच्छा करने लगे) ॥ ३४६ ॥

ललिता—अहे दुर्लभफल के हठी ! ललिता के समक्ष जगत् प्राण पवन भी श्रीराधा के स्तनाम्बर अर्थात् कञ्चुलिकाञ्चल स्पर्श करने में असमर्थ है, यहाँ पर तुम जो हस्त-निक्षेप करने को चाहते हो यह केवल तुम्हारी मूढ़ता है ॥ ३४७ ॥

कृष्ण—हे चाण्ड ! कृष्णसर्प की चालना में प्रयोजन नहीं है, उस की फुत्कृति से तुम विमोहिता हो जाओगी ॥

ललिता—(संस्कृत में) अब भय भत दिखाओ ॥ ३४८ ॥
क्यों कि ललिता आहितुण्डकी अर्थात् व्यालप्राहिणी है, उस की सिद्धमन्त्र में अच्छी व्युत्पत्ति है, उस के समस्त क्रूर सर्प का मस्तक उठाना सहज नहीं है ॥

कृष्ण—नान्दीमुखी ! घट्टाधिकारियों का मिथ्या बोलना स्वभावसिद्ध है परन्तु मैं सरलस्वभाव का हूँ, मेरी जिह्वा मिथ्या कथन में पराङ्मुखी रहती है तथा हाथ भी बलपूर्वक कार्य करने में सम्मत नहीं है । अतः यहाँ इन समस्त सुन्दरियों के साथ विरोध में दोष क्या है ? ॥ ३४९ ॥

ललिता—(परिहास के साथ ईषत् हास्य करके संस्कृतभाषा में) हे अघनाशन ! तुम्हारी रसना यत्न के साथ हजार हजार साध्वी रमणी के विम्बाधरामृत पान करने में पवित्र हो रही है वह क्यों मिथ्या कहेगी । और अनुरागान्वित जो हस्त सुन्दरियों के नीविबन्धन सहन नहीं करता है वह किस प्रकार से बल प्रकाश करेगा अतः अन्य कञ्चुलिकादि बन्धन का कहना ही क्या है ॥ ३५० ॥

कृष्ण—(किञ्चित् हास्य करके) ललिते ! सत्य ही तुम सब कृतपुण्यपुञ्जव्यक्तियों में शिरोमणि हो । तुम सब के अदृष्ट रूप

सिद्धौषधि के द्वारा आकृष्ट होकर भगवती पौर्णमासी की पार्श्व-वर्तिनी यह नान्दीमुखी उपस्थित हुई है ॥ ३५१ ॥

ललिता—नान्दीमुखी ! भगवती पौर्णमासी के चरण कमल की शपथ है, तुम यहाँ से शीघ्र चली जाओ, देखूँगी ये सब क्या करेंगे ॥ ३५१ ॥

नान्दीमुखी—ललिते ! जब कि हठिल चक्रवर्ती के हाथ में पड़ गयी हो तब तो जानो महासङ्कट उपस्थित है । अतः इस समय तुम सब का त्याग कर चले जाना स्नेह कार्य नहीं है । यद्यपि तुम मुझ को जाने के लिये शपथ दे रही हो तो भी इस समय परित्याग कर नहीं जा सकती । क्यों कि धर्म की अपेक्षा से स्नेह का बल अधिक है ॥ ३५२ ॥

अर्जुन—प्रियवयस्य ! जो सब दाम्भिक रमणियाँ शुल्क देने में विवाद कर रही हैं उन को मेरे निकट ले आओ । उद्यान-चक्रवर्ती के इस शासन को क्यों तुम विस्मृत हो जाते हो ॥

कृष्ण — (हर्षाभिनय करके) अर्जुन ने उत्तम स्मरण कराया है । अहे ललिते ! हमारे सखागण एवं तुम्हारी सखियाँ इस घाटी में अवस्थान करें । तुम अकेली हमारे साथ उद्यान-चक्रवर्ती के निकट गमन कर सुन्दर गोष्ठी-गङ्गा में अवगाहन के द्वारा निज चक्षु रूप मत्स्ययुगल को खेलाओ ॥

ललिता—हे धर्मभारवाहिन ! तुम पुण्यश्लोक के शिरोमणि हो, तुम्हारे साथ जो कुलरमणी जावेगी वस उस की तो दोनों कुल रक्षा हो जावेगी ॥ ३५४ ॥

कृष्ण—इस से क्या होगा ? घटुकर्म शीघ्र करना उचित है, इस में दीर्घसूत्रता का प्रयोजन नहीं है । शीघ्र ही बल पूर्वक शुल्क ग्रहण करूँ । (ऐसा कह कर राधिकानुसाधन में प्रवृत्त होने लगे) ॥ ३५५ ॥

ललिता—(उच्च हास्य करके) अहे सुन्दर सुकुमार ! निज नेत्र-प्राङ्गन में श्रीराधातनु स्पर्श के लिये महासाहस तुम में है यह सर्वतो भाव से प्रत्य नहीं हो रहा है । यह ललिता विक्रम-शालिनी गोपी करके प्रसिद्ध है । अतः यदि इस का पराक्रम देखने की अभिलाषा रखते हो तो शीघ्र जहाँ तक साध्य है अपने पराक्रम प्रकट करो ॥ ३५६ ॥

कृष्ण—(किञ्चित् हास्य करके) हे महाचण्डके ! तुम को नमस्कार, हे चामुण्डे ! तुम को नमस्कार । तुम मुण्डमाला रूप प्रसिद्ध निज अलङ्कार का त्याग कर निश्चय दुर्ग्वार कन्दर्प का संहारार्थ गोपिकारूप में अवतीर्ण हुई हो ॥ ३५७ ॥

विशाखा—सखि ललिते विजयिनी हो ॥

ललिता—(स्मित करके स्वगत) अब सुन्दर आलाप-विलास की आवश्यकता नहीं है । अतः इन दोनों के अभिलाष-सागर में अवगाहन के लिये सदुपाय संस्थापन करूँ ॥ ३५८ ॥ (प्रकाश्य में) विशाखे ! तुम भगवती पौर्णमासी के निकट जा कर हमारी इन बातों का निवेदन करो ॥

नान्दीमुखी—(स्वगत) भगवती तो माधवीमण्डप के अन्तराल में रह कर समस्त सुन रही है ॥ ३५९ ॥ (प्रकाश्य में) ललिते ! निश्चय बोध होता है कि भगवती गोकुलेश्वरी के पास में अवस्थित है ॥

राधा—(सपरिहास हास्य पूर्वक हस्तावरण करके) हे ललिते ! तुम्हारी आत्मा से भी हमारे प्रति अत्यन्त स्नेह आज प्रत्यक्ष हो रहा है । क्यों कि ईक्षित से बोध हो रहा है कि-तुम घटुपाल से हम सब की उपस्थित इस यातना से मुक्त करने के लिये आत्म-समर्पण करने में इच्छुक हो गई हो, अतः तुम अत्यन्त धन्या हो ॥ ३६० ॥

ललिता—अयि वीरव्रतारूपांत ! तुम्हारी वाग्युद्ध में विलक्षण क्षमता है और कामयुद्ध में भी क्षमता सामान्य नहीं है। क्योंकि बार बार तुम्हारी पुरुषाकार सौष्ठवसारता देखने में आ रही है। अतः तुम अनुग्रह करके कटाक्ष रूप जूझण वाण के द्वारा इस वीराभिमानि व्यक्ति को जूझित करके क्षणकाल यहाँ अवस्थान करो हम सब कुछ आगे चलकर प्रतीक्षा करती हैं ॥ ३६१ ॥

राधा—(प्रणय के साथ असूया प्रकट करके) अहे ! तुम अपने आकार सङ्गोपन विषय में दक्षता प्रकाश कर रही हो। जो भी हो यहाँ से दूर हो दूर हो, अभी देखना ॥

कृष्ण—(स्वगत) अब तो ललिता का क्रोध कुछ मन्द देखता हूँ। (प्रकाश्य करके) ललिते ! उत्तम, उत्तम, तुम समय परिस्थिति को जान लेती हो। क्योंकि आज मिथ्या-विवाद समूह का विघटन करके घाटी में अवस्थित कर रही हो ॥ ३६२ ॥

ललिता—हे छलक्रीड़ाविदग्ध ! गोपगण जिस प्रकार हठावलम्बी हैं सारग्राही गोपिकागण उस प्रकार नहीं हैं ॥ ३६३ ॥

विशाखा—(सम्भ्रम अभिनय करके) ललिते ! महाप्रमाद, महाप्रमाद है ॥

ललिता—किस प्रकार प्रमाद ?।

विशाखा—अयि कलह लोलुप से विस्मारित धर्मे ! शान्त हो- शान्त हो। उन याज्ञिकों ने हम सब के लिये यह आदेश किया कि तुम सब जब हवनीयघृत का आनयन करोगी उस समय कुलकामिनीगण के सतीत्व-हारी किसी दुष्ट कामीजन के प्रति दृष्टिपात मत करना। (ऐसा कह कर नासाग्र में तर्जनी अर्पण कर) हा धिक् हा धिक् तुम उन्मत्त हो कर मोहवश बहुकाल यावत् वृथा आलाप कर रही हो। अतः तुम्हारा वचन

संमिश्रित हो रहा है ॥ ३६४ ॥

ललिता—(विषाद अभिनय करके) विशाखे ! उत्तम कहती हो। मैं मोहित हो कर समस्त भूल गई हूँ। अतः इस विषय में निष्कृति की चिन्ता करो ॥

बृन्दा—(ईषत् हास्य करके) मुनिगण कहते हैं कि यज्ञपुरुष विष्णु का स्मरण से समस्त पाप विध्वंसन होता है अतः विष्णु का स्मरण करो ॥

ललिता—विष्णु विष्णु (ऐसा कह कर नासिका तथा कर्ण स्पर्श करने लगी) ॥ ३६५ ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य के साथ) ललिते ! तुम सत्य ही दूषिता हो गई हो। शीघ्र मेरे निकट आओ, दोष रहित करूँगा। (ऐसा कह कर हस्तप्रसारण अभिनय करने लगे) ॥ ३६६ ॥

ललिता—(सभय दूरगमन करके निर्वेद के साथ) हाय हाय ! परस्त्री को दूषित करने का साहस मत करो, मैं कुलवाला हूँ, स्पर्श करने पर दूषित हो जाऊँगी ॥

राधा—(ईषत् हास्य करके) ललिते ! तुम हम सब के निकट से शीघ्र चली जाओ। क्योंकि तुम स्त्रीचोर के द्वारा स्पर्श होकर कलङ्किता हो गई हो ॥ ३६७ ॥

ललिता—अयि ! आमोद करती करती एक अलीक कथा बोल गयी। नहीं तो हमारे समान पतिपरायणा मयूरी के निकट भुजभुजङ्ग उठने में समर्थ हो सकता है ॥ ३६८ ॥

राधा—अयि असत्यभाषिणि ! जान लिया, जान लिया, ठहरो ठहरो, तुम्हारे हर्षोत्फुल्ल लोमसमूह साक्ष्य प्रदान कर रहा है ॥ ३६९ ॥

ललिता—हे रतनारीक ! (हे उपपते !) मैं अत्यन्त दुःखिता हो गई हूँ। क्योंकि तुम से दूषित हो जाने के कारण सखियाँ

मेरा स्पर्श नहीं कर रही हैं। अतः "न दुःखं पञ्चभिः सह" अर्थात् "पाँच जन के साथ रहने पर दुःखानुभव नहीं है" यह वचन जिस से प्रमाणित हो वैसा करो। अर्थात् जिस प्रकार मेरा स्पर्श किया उस प्रकार सखियों को स्पर्श करो ॥

कृष्ण—चम्पकलते ! यह गगनस्पर्शि दीर्घशाखा—विशष्ट तमालतरु है अतः इस का अवलम्बन कर प्रफुल्ला हो ॥ ३७० ॥

चम्पकलता—(काँपती हुई किञ्चित् दूरवर्ती होकर) हे छैल ! जो व्यक्ति सोता रहता है वह कभी नीचे नहीं गिरता है। इस प्रमाण को लेकर तुम पुनः ललिता को दूषित करो ॥

ललिता—बोध करती हूँ कि तुम शीघ्र प्रियसखी विशाखा को कठिन विशाल पञ्चशाखा में उपशोभित देख पाओगी। अर्थात् कठिन विशाल हस्त के द्वारा पारशोभित देखोगी ॥ ३७१ ॥

कृष्ण—विशाखिके ! तरु के द्वारा आलिङ्गित होकर सुस्निग्ध छाया वती हो। परन्तु चम्पकलता की भाँति भङ्ग देकर यहाँ से चली मत जाओ ! पक्ष में—युवा जो मैं हूँ मुझ को आलिङ्गन कर सुशोभित हो ॥

विशाखा—(शीघ्र गमन करके) कलङ्किनि ललिते ! क्यों मुझे दूषित कर रही हो। निर्लज व्यक्ति स्वयं दुष्ट हो कर दूसरे को दूषित करता है। तुम इस वचन को सपुष्ट कर रहे हो ॥ ३७२ ॥ जो भी हो, तुम्हारा अभिप्राय सुन्दर रूप में व्यक्त हो गया, अतः मिथ्या अलीक भाव का प्रयोजन नहीं है। हम सब चिन्ता-कुल थीं कि तुमने दैववश हम सब को शुल्कयोग्य बना दिया ॥

ललिता—(किञ्चित् दूर में जाकर श्रीकृष्ण को देख कर नेत्र-प्रान्त कुञ्चित करने लगी) ॥ ३७३ ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य पूर्वक राधा को धरने की इच्छा कर) हे चञ्चलाक्षि ! ललिता के नयन-भङ्गि रूप प्रबल पवन से मेरा

कर पल्लव अत्यन्त आन्दोलित हो रहा है। अतः आज सभ्य-स्वरूप हमारे प्रति असूया के साथ चक्षुः निक्षेप मत करो ॥

राधा—(भय के साथ विशाखा के निकट गमन कर) सखि ! अपनी रक्षा करो, क्यों कि समस्त लोग कहते हैं कि राधा की मालिन्यता में विशाखा मलिना हो गयी ॥ ३७४ ॥

ललिता—अयि गान्धर्विके ! धूर्त्तशिरोमणि व्याध की अनुगामिनी होकर क्यों पञ्चसखी में मुख्या पञ्चमुखी ललिता का त्याग कर विशाखा रूप हरिणी की शरणागत हो रही हो ? ॥ ३७५ ॥

राधा—(प्रचुर कुतूहल के साथ भ्रूभङ्ग के द्वारा तिरस्कार करती ईषत् हास्य पूर्वक संस्कृत में)

हे विश्वासघातिनि ! बहुकाल यावत् उपरोध कर विश्वास दे कर परम शुद्धा हम सब को गृह से यहाँ लायी है। अब यदि लोभ-वश अपने व्रत को नष्ट करने की इच्छा करती हो तो उस में कोई क्षति नहीं है। हे देवि ! तुम अन्य सती को दूषित करती हो, क्या उस में तुम को लज्जा नहीं आती ? ॥ ३७६ ॥

ललिता—हा धिक् हा धिक् सखि बृन्दे कहो तो किस प्रकार मैं शुद्ध हूँगी ? ॥

बृन्दा—ललिते ! चिन्ताचर्या का प्रयोजन नहीं है। निकुञ्ज-महातीर्थ में रतिवल्लभ ने जागरण नामक व्रत का आरम्भ किया है। अब पाप की सम्भावना कहाँ है ? ॥

कृष्ण—क्रीडा कौतुक से क्यों निजकार्य में निश्चेष्ट हूँगा। क्यों कि आज शुल्क ग्रहण का उद्यम गुरुतर है ॥

नान्दीमुखी—ललिते ! देखो, मध्याह्न समय उपस्थित हो गया है, अतः कहो तो तुम सब कितने शुल्क देने में सहमत हो ॥ ३७७ ॥

ललिता—हे दानीन्द्र ! यद्यपि पचास गण्डा कौड़ी देना

उचित है तो भी तुम्हारी मुखापेक्षा से मणिमय अंगुरी प्रदान करती हूँ (ऐसा कह कर चित्रा की अंगुलि से मुद्रिका खींच कर श्रीकृष्ण के समक्ष रखने लगी)

कृष्ण—(छलपूर्वक क्रोध प्रकट कर के) सखे ! इस जुद्र-मुद्रिका को शीघ्र ही पर्वत में निक्षेप करो ॥

सुबल—(मुद्राक्षेप का अभिनय करके अपने हाथ में गोपन करने लगा) ॥ ३७६ ॥

ललिता—(क्रोध के साथ) बृन्दे ! तुम ने देखा है, यह दुर्लभ मणिमुद्रिका फेंक दी गई ॥

नान्दीमुखी—(क्रोध के साथ) बृन्दे ! तुम ने देखा है। यह मणिमुद्रिका निक्षिप्त हुई। नौ निधि के अधिपति कुबेर की महाचिन्तामणि अभिलाष से हस्तप्रसारित होने पर छिद्रकपर्दिका का निक्षेप जिस प्रकार होता है ठीक उस प्रकार तुम सब के व्यवहार को देख रही हूँ ॥ ३८० ॥

ललिता—(स्वगत) उत्कण्ठित इन दोनों को आश्वास प्रदान करूँ (ऐसा कह कर प्रदक्षिण पूर्वक हस्तावरण करके) हला राधे ! सत्य है कि विना दान दिये यहाँ से प्रस्थान करना दुर्लभ है। अतः शुल्क के लिये तुम्हारे कण्ठहार को अर्पण करती हूँ (ऐसा कह कर बल पूर्वक कण्ठ से हार उतार कर परिहास के साथ ईषत् हास्य करके) ॥ ३८१ ॥

हे उत्कण्ठिते ! क्यों अधीर हो रही हो ? यह निस्तृष्टार्थी मौक्तिकावली दूती श्रीकृष्ण को अलङ्कृत करने के लिये चल रही है। अतः अभिसार के लिये सज्जित हो जाओ ॥ ३८२ ॥

राधा—अयि संभोगारम्भिणि ! अब इस प्रकार दम्भगम्भीर कार्य का प्रयोजन नहीं है। इस विवादमहायज्ञ में तुम अदक्षिणा हो कर भी सखीगण के साथ प्रणय वश दक्षिणा निर्माण कर रही हो ॥ ३८३ ॥

ललिता—(श्रीकृष्ण के प्रति दृष्टिपात करके) हे घट्टनाथ ! यह अमूल्य मौक्तिकमाला तुम्हारे निकट सुरक्षित रखती हूँ। पुनः सन्ध्या के समय तुम को सुवर्ण अर्थात् राधिका को देकर इस माला को ले जाऊँगी ॥

कृष्ण—(हर्ष पूर्वक हारग्रहण कर स्वगत) वह यह शङ्खचूड़ के चूड़ामणि को नायक अर्थात् हार मध्यवर्त्ति किया गया है। प्रलम्बारी बलदेव जी ने अनुकम्पा कर के श्रीराधा के लिये इस को अर्पण किया है। अत एव सम्प्रति यह मुक्तावली मेरे प्रत्याशवीज की अंकुरित कर रही है। (ऐसा कह कर अपने कण्ठ में हार अर्पण करने लगे) ॥ ३८४ ॥

राधिका—(हस्तावरण करके) ललिते ! तपस्विनी मौक्तिकावली के भाग्य को देखा ॥

ललिता—राधे ! तुम्हारे स्तनरूप शम्भु की सेवा कर यह मौक्तिकावली शुद्ध हो रही है, इस लिये वह आज श्रीहरि के हृदयोपरि विराज कर रही है, यह तो हार की महिमा नहीं है, तुम्हारी ही महिमा है ॥ ३८५ ॥

राधा—कुटिले ! अब प्रलाप का प्रयोजन नहीं है। इस से भी भ्रमरकलङ्कित भंगुरिता वनमाला के प्रचुर सौभाग्य लीलाविलास को देखो (ऐसा कह कर संस्कृत में) ॥ ३८६ ॥

हे वनमाले ! तुम क्यों सर्वदा विशुद्ध ब्रजाङ्गनाओं के साथ साक्षात् विद्वेष विधान कर रही हो ? क्यों कि हम सब को तृण ज्ञान करके अघारि के मस्तक से चरण पर्यन्त आलिङ्गन कर उन के विशाल हृदय में विहारशील हो रही हो ॥ ३८७ ॥

मधुमङ्गल—हे कल्याणि ललिते ! तुम सब ने महाघट्टपालेन्द्र श्रीकृष्ण को आनन्दित किया है। यह व्यक्ति लुयातुर है। एक मक्खनभरी हुई बड़ी सी गागरी के द्वारा कायस्थ मुक्त को कायस्थ बनादा। अर्थात् सम्प्रति मैं काया में आस्थित नहीं हूँ

(७६)

भाषा-दानकेलिकौमुदी

परन्तु घृतगर्गरी में । क्यों कि मेरा प्राण तो तद्गत है, अतः मेरे शरीरी में गर्गर घृत रख कर जीवन का स्थापन करो ॥ ३८८ ॥
विशाखा—अहे लोलुप ! ऐसा मत कहो, यह यज्ञीयघृत है ॥ ३८९ ॥

मधुमङ्गल—विशाखे ! वे याज्ञिक ब्राह्मणीगण धन्य हैं क्यों कि उन्होंने अपने गृह के आङ्गिरसयज्ञ की उपेक्षा करके उत्कृष्ट मिष्टान्न भोजन के द्वारा गोपबालकों को तृप्त कराया है । परन्तु खेद की बात यह कि-तुम सब दूसरे के यज्ञ योग्य नवनीत के द्वारा एक ब्राह्मण बालक को भोजन न दे सकीं ॥

कृष्ण—ललिते ! इस महाघट्टेश्वर मुक्त को जो हार उपहार दिया है वह अति उत्तम हो रहा है । अब उद्यानराजा को अभिमत शुल्क प्रदान करके उस के पूजानुष्ठान करो ॥ ३९० ॥

ललिता—(प्रणय कोप के साथ) जान कर भी तुम्हारे पास आयी हूँ, अतः इस प्रकार विडम्बना उचित नहीं है ॥ ३९१ ॥

नान्दीमुखी—दानीन्द्र ! अपने अभिमत दान क्या है प्रकाश करके कहो, मैं मध्यस्थ होकर मीमांसा कर देती हूँ ॥ ३९२ ॥

कृष्ण—नान्दीमुखि ! सुनो, आर्या राधा के सभास्थित परार्द्ध परिमित साध्वी आपके निकट हैं, इस विषय में अधिक क्या कहा जा सकता है । यदि कहो कि अब इतनी संख्या कहाँ है तो मैं क्या करूँगी । जो हो, आप श्रीराधिका को जो परार्द्ध मूल्या अर्थात् सर्वश्रेष्ठा है उस को हमारे पास गिरवी रख लींजिये, अवशिष्ट सब चले जावें ॥ ३९३ ॥

नान्दीमुखी—हे रङ्गिल श्रेष्ठ ! चित्रा तुहारी चित्तानुवर्तिनी है । अतः यह चित्रा तुम्हारे शुल्क की उपयुक्ता है ॥

कृष्ण—चित्रा तो हाथ के आगे है वह दुर्लभ नहीं है ।

पौर्णमासी—(प्रवेश करके) हे नागर ! हे नागरियों के मस्तक में अभिषिक्त ! तुम जिस के प्राति महान् स्पृहायुक्त हो

उस को परार्द्ध से भी दुर्लभ अमूल्य जानना ॥

कृष्ण—(लज्जा के साथ प्रणाम करके) मैं तो केवल शुल्क-वित्त प्राप्ति के लिये इस प्रकार आप्रह्न कर रहा हूँ । परन्तु पञ्च वराटक मूल्यवाली गोपियों के लिये नहीं ॥ ३९४ ॥

राधा—हम सब विपद् सागर के पार देख पा रही हैं, क्यों कि स्वयं भगवती आप यहाँ आकर उपस्थित हैं ॥

पौर्णमासी—(हस्तावरण करके) हे कृशोदरि ! अटवी-मण्डलेन्द्र दानीन्द्र के विश्व प्रकटन दान न मान कर गर्वोन्नत, क्रुद्ध एवं कलहकारिणी तुम सब का विडम्बना-सागर में क्या पतन नहीं होगा ॥ ३९५-३९६ ॥

ललिता—भगवति ! हम सब ने दुर्लभ हार को अर्पण किया है तो भी हम सब को मुक्त नहीं कर रहा है ॥ ३९७ ॥

पौर्णमासी—ललिते ! देखो, तुम्हारे प्रबल कलह कषाय-वर्ण से पिञ्छचूड़ श्रीकृष्ण के चित्रा रूप दुकूल रक्तवर्ण होगया है । अतः वे प्रतिकूल हो रहे हैं । प्रिया के उपहार के बिना ये धीर क्रोध संरम्भ का त्याग नहीं करेंगे ॥ ३९८ ॥

नान्दीमुखी—भगवति ! आज्ञा कीजिये इन में से यह भार कौन वहन कर सकती है ॥ ३९९ ॥

पौर्णमासी—पाँच जनों में जो पद्मनयनी परम आराधनीया एवं धीरा है वह इस के वहन में अप्रगण्या है । अर्थात् इस विषय के भार वहन में राधा ही समर्था है ॥

ललिता—(ईषत् हास्य करके श्रीराधा के प्रति दृष्टिपात कर नेत्र सकुचित करने लगी)

राधा—(चिन्ता का अभिनय करके वृन्दा के कर्णमूल में लगती है) ॥ ४०० ॥

वृन्दा—वेदिमध्या अर्थात् श्रीराधा यह निवेदन कर रही है कि-हाय विश्ववेदिनि ! जो मनोहर चातुरी चमत्कृति का प्रकाश

(७८) करती है वह ललिता आज इस महासङ्कट में शुल्क रूप से निर्णीत हो रही है। केवल आप की अनुज्ञा प्रतीक्षा करके सम्मुख में उपस्थित है ॥ ४०१ ॥

ललिता—(ईषत् हास्य करके) हृदय रत्न के जयारम्भ होने पर वृथा छलरङ्ग रक्षा का प्रयोजन नहीं है।

पौर्णमासी—ललिता ने अयुक्त नहीं कहा है ॥ ४०२ ॥

राधा—(किञ्चित् उच्च स्वर से मानो) भगवति ! इस दुरन्त विपद में घट्टपाल के हाथ में कातर न होकर सरल एक जन को शुल्क के लिये प्रदान कीजिये। (ऐसा कह कर संस्कृत में) इस पर्वत के कुरङ्गगह्वर में कृष्ण रूप भुजङ्गराज भ्रमण कर रहा है। वह जिस का स्पर्श करता है उस की असाध्य विषम-दंशा हो जाती है, मैं भद्र-अभद्र कुछ विवेचन नहीं कर पाती हूँ। उस का दर्शन मात्र से मृतवत हो गई हूँ। अतः इस अवस्था में मुझ को शुल्क के लिये निक्षेप करने की इच्छा कर रही हो। (ऐसा कह कर छल पूर्वक शुष्क-रोदन करती करती पादसमीप में लोटने लगी)

पौर्णमासी—(भुजदोनों से आलिङ्गन करके) वत्से ! रोदन मत करो, ये सब तुम्हारे आगे को सुखप्रद होंगे ॥ ४०२-४०४ ॥

कृष्ण—भगवति ! सत्य, मैं भाग्यवान हो गया। क्योंकि इस समीचीन समय में आप उपस्थित हुई हैं। अतः अपने को स्वीकृतशुल्क रूप में मान रहा हूँ ॥ ४०५ ॥

पौर्णमासी—(हस्तावरणकरके) रमणीय निधि रमणीमणी तुम्हारे उपकण्ठ में शोभादायिनी हो रही है, अन्य तुच्छ शुल्क में प्रयोजन क्या है ? ॥ ४०६ ॥

कृष्ण—(आनन्द के साथ मन मन में) भगवती ने मेरी इच्छा अनुरूप श्रीराधा को शुल्कार्थ नियुक्त किया है। यह तो अति सौभाग्य का विषय है। (प्रकाश्य से) भगवति ! इस

स्निग्ध अरुण कौमुदीसमूह से युक्त रमणीरत्न की प्राप्ति-पक्ष में आप के अनुग्रह के बिना अन्य कोई युक्ति नहीं है ॥ ४०७ ॥

पौर्णमासी—(मधुर हास्य के साथ) नागरेन्द्र ! मैंने इस को चिन्तामणि रूप से अर्थात् हारमध्यगत श्रेष्ठ रत्न रूप में प्रस्तुत किया है। तुम तो कान्तामणि बोल कर मान लो ॥ ४०८ ॥

कृष्ण—(लज्जा के साथ ईषत् हास्य करके) भगवति ! यहाँ तक मेरे वाक्य की विश्रान्ति हुई। क्यों कि इस स्त्रीरत्न प्राप्ति विषय में आप की सभापरिषद की मन्त्री-विद्या सम्पत्ति ही कारण हो रही है ॥ ४०९ ॥

पौर्णमासी—हे चातुरी-विद्या के महोपाध्याय ! अब विस्मित भाव प्रकाश मत करना। चिन्तामणिलाभ ही अवश्य कान्तामणिलाभ के लिये होता है। अर्थात् जब कि इस का हार प्राप्त हुआ है तब तो निश्चय इस की प्राप्ति सिद्धि हुई है ॥ ४१० ॥ प्रत्युष की शोभा के उपस्थित होने पर सूर्य सम्बन्धिनी शोभा की आकाश सेवा में व्यभिचरिष्णुता नहीं होती है। पक्ष में—भानुजा श्रीराधा की शोभा विष्णु—तुम्हारी पदसेवा के लिये नहीं होती है, अर्थात् होती हैं। अत एव तुम पूर्ण हो रहे हो ॥ ४११ ॥

वृन्दा—पूर्णमा के उपस्थित होने पर कलानिधि चन्द्र का पूर्णविकाश नहीं होता है क्या ? ॥ ४१२ ॥

पौर्णमासी—वृन्दे ! राधा अर्थात् विशाखानक्षत्र को लेकर ही विधु अर्थात् चन्द्रमा के द्वारामाधवी अर्थात् वैशाखी पूर्णिमा माधुर्यशालिनी हो रही है। पक्षान्तर में विधु श्रीकृष्ण विशाखा सखी के द्वारा संयुक्त होकर श्रीराधा-सहयोग से पूर्णत्व प्राप्त हो रहे हैं ॥

वृन्दा—अतः पूर्णिमा विशाखासखी के द्वारा इस पूर्णत को सम्मुख में योजित करें। (ऐसा कह कर ललितादि सखियाँ

पौर्णमासी के बल से बलवती होकर श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण को निर्जन केलिकुञ्ज में प्रवेश कराने लगीं)

पौर्णमासी—(कुछ क्षण के बाद जब दोनों दिव्य वेशभूषा करके समागत हुए तब दोनों को देख कर) हे वैदग्ध्योचन्द्रिका-चन्द्र ! यहाँ उत्तम प्रतिनिधि हो रहा है । सायंकाल मैं तुम्हारे अभीष्ट शुल्क का प्रदान करूँगी । अत एव आज्ञा कीजिये । ये सब यज्ञवेदी की शोभा-सम्पादनार्थ गमन करें ॥

कृष्ण—(लज्जा के साथ) जैसी आज्ञा ॥

पौर्णमासी—हे सन्वर्तनन्दकदम्बमूर्त्ति ! यद्यपि तुम्हारे इस मनोज्ञविलास से मैं कृतार्थ हो गयी हूँ तौ भी कुछ प्रार्थना करने की इच्छा करती हूँ ॥

कृष्ण—(हर्ष के साथ) भगवति ! शीघ्र आज्ञा कीजिये । तुम्हारा पुनः क्या प्रियसाधन करूँ ॥ ४१३ ॥

पौर्णमासी—हे निरवद्य केलिमाधुरीसुधासागर ! उत्तम प्रसङ्ग में की हुई प्रार्थना निश्चय फलगर्भिणी होती है । सम्प्रति यह निवेदन करती हूँ कि-हे माधव ! सहचरीवृन्द से परिमलित गुणप्रवरा इस राधिका के साथ तुम नर्म सखागण से परिवेष्टित होकर सर्वदा घट्टाविलास करो ॥ दूसरी प्रार्थना यह है कि-जो जन अन्य कर्म समूह को परित्याग पूर्वक राधाकुण्ड के तटस्थ कुटीर में निवास कर साक्षात् तुम दोनों की सेवा करने में उत्कण्ठित होता है हे माधव ! वृन्दारण्यनिवासियों के अभीष्ट पूर्णविषय में क्रीड़ाकटाक्ष निक्षेपकारी तुम उम के तर्षाख्य मनोरथ तरु को शीघ्र ही फलशाली विधान करना ॥

कृष्ण—(हर्ष के साथ अङ्गीकार करके) भगवति ! वैसा ही होगा । अत एव आज्ञाओ, अपने अपने कार्य के लिये हम सब गमन करें । (ऐसा कह कर सब प्रस्थान करने लगे) ॥ ४१४ ॥

इति दानकेलिकौमुदी नामक भाणिका का कृष्णदास कृत

भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥